Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वेदोऽखिलो धर्ममूलम्

वेद प्रकाश

आजीवन आचरणीय चार उत्तम कर्म

स्वधया परिहिता श्रद्धया पर्यूढा दीक्षया गुप्ता यज्ञे प्रतिष्ठिताः। लोको निधनम् ॥ —अथर्व० १२।५।३

मन्त्र में चार महत्त्वपूर्ण कर्त्तव्यों की ओर मानव समाज का ध्यान आकृष्ट कर जीवन को सुखी बनाने के लिए मृत्युपर्यन्त उन पर आचरण का परामर्श दिया है। उनमें पहला है—**'स्वधया परिहिताः'** परिश्रम के पश्चात् जो वस्तु आपके हिस्से में आती है, उसे अमृत समझो और उसी को ग्रहण करो।

वेद का दूसरा उपदेश है—**'श्रद्धया पर्यूढाः'** तुम्हारा प्रत्येक कार्य सत्य की पहचान करके उसके ऊपर आचरण करने वाला हो। आजीवन तुम्हारा प्रत्येक अनुष्ठान श्रद्धा से सुवासित हो।

वेद का तीसरा उपदेश है—**'दीक्षया गुप्ताः'** तुम लोग दीक्षा से सुरक्षित रहने वाले हो। शिक्षा के दो भेद हैं—एक शिक्षा और दूसरी दीक्षा। शब्दमय ज्ञान का नाम शिक्षा है। वह शब्दमय ज्ञान आचरण के माध्यम से जब हमारे आन्तरिक जीवन का अंग बनता है तो दीक्षा कहा जाता है। अतः दीक्षा ही तत्त्व की वस्तु है और वह निश्चित रूप से आत्मा की रक्षा करती है।

वेद का चौथा उपदेश है—**'यज्ञे प्रतिष्ठिताः'** सब का जीवन याज्ञिक भावना में सब प्रकार से निहित हो। यह जड़ और चेतन संसार एक दूसरे के सहयोग और संगतिकरण से चल रहा है। यदि इस शृङ्खला की एक कड़ी टूट जाये तो सब काम ठप्प हो जाएंगे।

मन्त्र के अन्तिम शब्द हैं—**'लोको निधनम्'** ये आचरण मनुष्य मात्र को मृत्युपर्यन्त करते रहने चाहिएं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

बोध कथा

बाबू जी, इन बच्चों को कभी मत भूलना

स्वामी श्रद्धानन्द संन्यासी ने 'कल्याण मार्ग का पथिक' शीर्षक अपनी आत्मकथा में अपने गृहस्थी जीवन के कुछ मार्मिक चित्र प्रस्तुत किए हैं । "सहधर्मिणी के साथ मेरा शनैः शनैः अटूट सम्बन्ध हो चुका था । शिवदेवी से कभी बिछुड़ने का ख्याल तक न आता था और उन्होंने वैदिक संस्कारविधि का पाठ करके यह धारणा दृढ़ कर ली थी कि पति से कभी वियोग न होना चाहिए ।"

१२ भाद्रपद संवत् १९४८ (२८ अगस्त, सन् १८९१ई०) की शाम को दस्त और वमन प्रारम्भ हुए । डाक्टर सारी रात रखकर मैं जागता रहा। तीन बजे प्रातः दस्त बन्द हो गए । समझ लिया, अब नीरोग हो गई है। १३ भाद्रपद (२९ अगस्त) के दिन और रात आराम करता रहा । १४ भाद्रपद (३० अगस्त) को आर्यसमाज के साप्ताहिक अधिवेशन में बैठे समाचार आया कि फिर दस्त शुरू हो गए । घबराहट कुछ-कुछ कम हो रही थी। ...माता ने आकर शाम से ही गोद में ले लिया । देवी के भाई पास थे। बहुतेरा इलाज किया, परन्तु काल के आगे किसी का वश न चला । नौ बजे रात को जब माता थोड़ी देर के लिए अलग हुई तब पुत्री वेदकुमारी से अपना कलमदान मांगा । पर्चे पर कुछ लिखा और उसके निचले खाने में रख दिया । एक बजे जब मैं दवाई पिलाने लगा, तब हाथ जोड़ कर प्रणाम किया । जब दवाई पिला चुका, तब माता को धीमे स्वर से कहा—"मुझ से बड़े अपराध हुए हैं, जिनकी मुझे सेवा करनी थी, वह मेरी सेवा कर रहे हैं ।" माता ने प्यार किया । भाई देवराज ने कहा—"बीवी जी, भजन सुनोगी ।" कहा—"हां ।" देवराज जी ने आरम्भ किया—"प्रभु जी, भेंट धरूं क्या मैं तेरे ।" देवी लब (होंठ) हिलाती रहीं । बोल नहीं सकती थीं । भजन समाप्त हुआ । माता ने रोकर पूछा—"बच्चे किसके सुपुर्द कर चली हो ।" उत्तर मिला—"आप ही पल जाएंगे ।"

मुझे देवी बाबू जी कहकर सम्बोधन किया करती थीं । साढ़े चार बजे मैं बाहर डाक्टर से कुछ सलाह करने गया । बीस मिनट पीछे बुलावा आया । मुझे देखते ही दो बार कहा—"बाबू जी" मैंने झुककर नब्ज हाथ में ली । होंठ हिलते थे । एक बार स्पष्ट 'ओ३म्' का उच्चारण मैंने सुना और फिर माता की गोद में प्राण त्याग दिए ।

दूसरे दिन प्रातः मैंने देवी का सामान संभालना शुरू किया । बड़ी पुत्री ने कलमदान लाकर बतलाया—"माता जी ने एक कागज लिखकर इसमें रखा था । मैंने कागज निकाला, उसमें लिखा था—"बाबू जी, मैं अब चली। मेरे अपराध क्षमा करना । आपको तो मुझसे अधिक रूपवती और बुद्धिमती सेविका मिल जायेगी, परन्तु इन बच्चों को कभी मत भूलना । मेरा अन्तिम प्रणाम स्वीकार करो ।"

देवी के वे वाक्य मेरे हृदय पर अंकित हो गए । रात को सब बच्चों को सुलाकर मैंने एक घण्टे तक परमात्मा से बल के लिए प्रार्थना की और दृढ़ व्रत धारण किया कि बच्चों के लिए माता का स्थान भी मैं ही पूरा करूंगा ।

—नरेन्द्र विद्यावाचस्पति

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

भारतीय विद्वानों में पं० सुन्दरलाल, डॉ० ताराचन्द और केन्द्रीय शिक्षा-मन्त्री डॉ० हुमायूं कबीर प्रभृति का नाम लिया जा सकता है।

ईश्वर एक है

जहां तक वेद का सम्बन्ध है, उसकी बात वेद के ही आधार पर कही जाए तो अच्छा है, क्योंकि अन्य ग्रन्थ के आधार पर कही हुई बात परतःप्रमाण होगी और उसके विवाद का विषय बन जाने की भी सम्भावना है। इसके अलावा वेद स्वयं इतना समर्थ है कि उसे अपनी बात की पुष्टि के लिए किसी अन्य ग्रन्थ की सहायता की आवश्यकता नहीं।

वेद ने स्वयं ही उक्त गुत्थी सुलझा दी है। ऋग्वेद का एक मन्त्र है—

एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः।
इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्॥

—ऋक्० १।१६४।४६

ज्ञानी लोग एक ही ईश्वर को अनेक नामों से पुकारते हैं—अग्नि, यम, मातरिश्वा, इन्द्र, मित्र, वरुण, सुपर्ण, गरुत्मान्—सब उसी एक ईश्वर के नाम हैं। [देखिए सत्यार्थप्रकाश प्रथम समुल्लास—उसमें परमात्मा के इसी प्रकार के १०८ नामों की व्याख्या की गई है।]

इसी प्रकार **"य एकश्चर्षणीनां वसूनामिरज्यति"** (ऋक्० १।७।९); **"य एक इद्विदयते वसु मर्ताय दाशुषे"** (ऋक्० १।८४।७); **"ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्"** (यजु० ४०।१); **"भुवनस्य दस्पतिरेक एव नमस्यः"** (अथर्व० २।२।१) इत्यादि अनेक मन्त्र चारों वेदों से उद्धृत किये जा सकते हैं, जिनमें ईश्वर का एकत्व प्रतिपादित होता है। विशेष बात यह है कि जहाँ ईश्वर की एकता के प्रतिपादित सैकड़ों मन्त्र हैं, वहाँ ईश्वर की अनेकता को सिद्ध करने वाला एक भी मन्त्र प्रस्तुत करना कठिन है। इसी प्रसंग में अथर्ववेद (१३।४।२) के १६ से १८ तक के मन्त्र ध्यान देने योग्य हैं—

"न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थो नाप्युच्यते। न पंचमो न षष्ठः सप्तमो नाप्युच्यते। नाष्टमो न नवमो दशमो नाप्युच्यते। स एक एव एकवृदेव एव।"

—उसे दूसरा, तीसरा और चौथा नहीं कह सकते। पाँचवाँ, छठा, सातवाँ भी नहीं कह सकते। आठवाँ, नवाँ और दसवाँ भी नहीं कह सकते। वह एक ही है, अकेला ही जगत् की उत्पत्ति-स्थिति-प्रलय करने वाला है। वह एक ही है।

अनेकेश्वरवाद का खण्डन करने वाला और ईश्वर की एकता का प्रतिपादन करने वाला इससे अधिक स्पष्ट और प्रांजल वर्णन संसार के अन्य किसी धर्मग्रन्थ में नहीं मिल सकता—यह बात चुनौती देकर कही जा सकती है।

न सही अनेक ईश्वर, परन्तु वेद में अनेक देवताओं का तो वर्णन है?

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

इसे कोई अस्वीकार नहीं करता। वेद में अनेक देवताओं का वर्णन अवश्य है, किन्तु उपासना के योग्य ईश्वर सर्वत्र एक ही बताया गया हैं। जहाँ तक देव या देवता शब्द की बात है, वहाँ सर्वत्र समझना यह है कि 'देव' शब्द दिवु धातु से बनता है। उस दिवु धातु का व्याकरण-समस्त अर्थ है—क्रीड़ा, विजिगीषा, व्यवहार, द्युति, स्तुति, मोद, मद, स्वप्न, कान्ति और गति। अर्थात्, जिस किसी पदार्थ में इनमें से किसी भी गुण-विशेष का आधिक्य हो, वही देव कहलाएगा। संक्षेप से कह सकते हैं कि दिव्य गुण को धारण करने वाली प्रत्येक वस्तु देव कोटि में आती है। पृथिवी, अग्नि, वायु, जल, चन्द्र, सूर्य आदि सब देव हैं क्योंकि विशिष्ट गुणों को धारण करने वाले हैं। विद्वानों को भी देव कहते हैं, क्योंकि वे अपनी विद्या के बल पर चमकते हैं। देववाची प्रत्येक शब्द प्रकारान्तर से परमात्मा का भी वाची होता है, क्योंकि आखिर सब देवों का अधिष्ठाता तो वही है। कौन-सा देववाची शब्द किस स्थान पर परमात्मा का वाचक है और किस स्थान पर अन्य पदार्थ का, इसका निर्णय प्रकरण के अनुसार करना होगा। देवता के अनेक होने पर भी आराध्यदेव केवल ईश्वर है और वह सब देवों का अधिष्ठाता है—वेद का यही सिद्धान्त है और इसमें कहीं शंका का स्थान नहीं है।

तैंतीस देवता

यजुर्वेद में जो तैंतीस देवताओं का वर्णन आता है उसकी व्याख्या शतपथ के अनुसार इस प्रकार है—आठ वसु, ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य, एक इन्द्र और एक प्रजापति (८ + ११ + १२ + १ + १ = ३३) ये तैंतीस देवता हैं। पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, चन्द्र, सूर्य और नक्षत्र—ये आठ वसु हैं, क्योंकि ये समस्त सृष्टि के वास-हेतु हैं; इनके बिना सृष्टि की कल्पना नहीं की जा सकती। प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनंजय और जीवात्मा—ये ग्यारह रुद्र हैं क्योंकि जब ये शरीर को छोड़कर जाने लगते हैं तो सबको रुलाते हैं। संवत्सर के बारह मास चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष, माघ, फाल्गुन बारह आदित्य हैं क्योंकि ये सबकी आयु को लेते जाते हैं। इन्द्र है बिजली—अन्तरिक्ष में यह वृष्टि की जनक है और भूलोक में वैज्ञानिक क्रान्ति की जनक है; इसीलिए ऋषि ने इसे परमैश्वर्य का हेतु बताया है। बिना उद्योगों के राष्ट्र समृद्ध नहीं हो सकता और बिना बिजली के उद्योगों का विस्तार नहीं हो सकता। उद्योगीकरण से राष्ट्र को ऐश्वर्यशाली बनाने के लिए ही बिजली की अधिकाधिक आवश्यकता है और इसीलिए इस दिशा में इतना प्रयत्न किया जाता है। प्रजापति है यज्ञ। यज्ञ को प्रजापति इसलिए कहा है कि यज्ञ के द्वारा ही वायुमण्डल की शुद्धि, वृष्टि, जल और ओषधि की शुद्धि होती है तथा

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

विद्वानों के संगतिकरण से अनेक शिल्प-विद्याओं का विकास होता है, और ये ही सब प्रजापालन में सहायक हैं।

क्या ईश्वर का प्रत्यक्ष ज्ञान सम्भव है ?

आप देवताओं की व्याख्या के चक्कर में पड़े हैं, परन्तु हम तो सब देवों के देव —ईश्वर—की सत्ता को ही अस्वीकार करते हैं। क्या ईश्वर का अस्तित्व किसी तरह सिद्ध किया जा सकता है ?

यों तो ईश्वर की सत्ता को सिद्ध करने के लिए अन्य अनेक प्रकार की युक्तियाँ दी जा सकती हैं, किन्तु इस समुल्लास में ऋषि ने अद्भुत ढंग से ईश्वर की सत्ता सिद्ध की है। जितने वैज्ञानिकम्मन्य लोग हैं, वे यह कहते हैं कि हम तो केवल प्रत्यक्ष को ही प्रमाण मानते हैं, अप्रत्यक्ष वस्तुतत्त्व में हमारी आस्था नहीं। प्रयोगशाला में बैठकर अपनी इच्छानुसार जिस पदार्थ को तोड़ने-फोड़ने, घटाने-बढ़ाने और जिसकी क्रिया-प्रतिक्रिया को जांचने की सुविधा वैज्ञानिक को न मिले, उस पदार्थ की सत्ता में वह विश्वास करे भी कैसे ? न्यूट्रोन, प्रोटोन और इलेक्ट्रोन जैसे सूक्ष्म तत्त्वों तक पहुँचकर तो उसका 'अहम्' और भी फूल गया। वैज्ञानिक यह समझने लगा कि अणुबम बनाकर सृष्टि का संहार करने की कुंजी मैंने अपनी मुट्ठी में बन्द कर ली, इसलिए इस सृष्टि का कर्ता-धर्ता-संहर्ता मेरे सिवाय और कौन हो सकता है ?

ऋषि ने कहा कि ईश्वर का भी प्रत्यक्ष होता है। ईश्वर प्रत्यक्ष न होने की जिस युक्ति के भरोसे नास्तिकों के सब सम्प्रदाय और आधुनिक वैज्ञानिकगण मन में फूले नहीं समा रहे थे, ऋषि ने उसकी जड़ ही काट दी।

ईश्वर का प्रत्यक्ष कैसे होता है, अब यह देखिए।

न्यायदर्शन के अनुसार, इन्द्रिय और अर्थ के सन्निकर्ष से उत्पन्न जो निर्भ्रान्त और निश्चयात्मक ज्ञान है, वही प्रत्यक्ष कहलाता है। इन्द्रियाँ हैं—आँख, नाक, कान, जिह्वा और त्वचा तथा मन। आँख से रूप का अनुभव होगा, नाक से गन्ध का, कान से शब्द का, जिह्वा से रस का और त्वचा से स्पर्श का। अब रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द तो गुण हैं, किन्तु जब इन्द्रियों का इन गुणों से सन्निकर्ष होता है, तब हम आत्मायुक्त मन से गुणी का प्रत्यक्ष करते हैं। विज्ञान की दृष्टि से पदार्थ उसको कहते हैं जिसमें भार हो और जो स्थान घेरे। इस व्याख्या के अनुसार जैसे रूप-रस आदि पदार्थों के गुण हैं, वैसे ही भार होना या स्थान घेरना भी गुण है; स्वयं पदार्थ नहीं। रूप-रस आदि का तो कोई भार भी नहीं होता, न ही वे स्थान घेरते हैं। समस्त संसार में जितने भी पदार्थ हैं उन सबके गुणों का ही सम्पर्क हमारी इन्द्रियों के साथ होता है और उन गुणों के सम्पर्क से ही हम कहते हैं कि हमें अमुक पदार्थ अर्थात् गुणी का प्रत्यक्ष हो जाएगा। जिस प्रकार हम सामान्य

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

व्यवहार में गुण से गुणी का प्रत्यक्ष करते हैं, उसी प्रकार इस समग्र सृष्टि-रचना-चातुरी को देखकर इसके रचयिता अर्थात् गुणी परमात्मा का प्रत्यक्ष होता है। यदि कहा जाए कि परमात्मा का इस प्रकार प्रत्यक्ष हम नहीं मानते, तो लोक में भी किसी पदार्थ का प्रत्यक्ष सम्भव नहीं; यदि लोक में किसी भी पदार्थ का प्रत्यक्ष सम्भव है—जिससे न चार्वाक इन्कार करते हैं, न विज्ञान को सर्वेसर्वा समझने वाले कम्युनिस्ट तथा अन्य नास्तिक—तो सृष्टि को देखकर सृष्टिकर्ता का भी प्रत्यक्ष मानना ही होगा। सृष्टि-रचना में कहीं चातुरी नहीं है, इस बात से कट्टर-से-कट्टर नास्तिक भी इन्कार नहीं कर सकता। चातुरी गुण है और वह गुणी का प्रत्यक्ष करवाने में प्रमाण है।

एक अन्य युक्ति

ईश्वर की सत्ता में एक और अकाट्य युक्ति है। नास्तिक लोग ईश्वर की सत्ता से भले ही इन्कार करें, किन्तु जीवात्मा की सत्ता से इन्कार करना उनके बस की बात नहीं। जीवात्मा की सत्ता का निषेध करना तो एक तरह से अपनी ही सत्ता का निषेध करना हुआ, और अहम्भाव से ओत-प्रोत वैज्ञानिकम्मन्य ऐसा कैसे कर सकता है? प्रश्न यह है कि जब मनुष्य परोपकार का या भलाई का कोई काम करने लगता है, तब उसके मन में भलाई के लिए उत्साह और प्रेरणा कहाँ से पैदा होती है? और जब मनुष्य कोई अनाचार या बुराई का काम करने लगता है, तब उसके मन में भय, शंका और लज्जा की भावना कौन पैदा करता है? मनुष्य का मन तो सदा पानी की तरह नीचे की ओर, पतन की ओर जाने के लिए उद्यत रहता है, उत्थान के पथ पर बढ़ने की उमंग उसमें कहाँ से पैदा होती है? कहना नहीं होगा कि यह काम परमात्मा की ओर से होता है। जीवात्मा तो इस विषय में सर्वथा तटस्थ है, बल्कि मन की गति के साथ ही चलने की ओर उसका झुकाव अधिक रहता है। अच्छाई की प्रेरणा और बुराई से संकोच ऐसी सार्वत्रिक भावना है कि पापी से पापी आदमी भी इसकी सचाई से मना नहीं कर सकता। परम दार्शनिक, परम वैयाकरण और साहित्यिक योगिराज भर्तृहरि ने इसीलिए ईश्वर की सिद्धि का एकमात्र प्रमाण **'स्वानुभूत्येकमानाय'** कहकर दिया है, अर्थात्—ईश्वर की सत्ता का एकमात्र प्रमाण अपनी अनुभूति है। और जिसको एक बार अच्छाई के प्रेरक और बुराई के निवारक प्रभु की सत्ता की अनुभूति हो गई है, सारा संसार भी अपने तर्कजाल के अम्बार के बल पर उसे अनुभूति से विरत नहीं कर सकता। यही अनुभूति महापुरुषों को संघर्षों का और विपरीत परिस्थितियों का मुकाबला करने की शक्ति प्रदान करती है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ईश्वर सर्वव्यापक है

अच्छा मान लिया कि ईश्वर है, किन्तु वह रहता कहाँ है ? कोई कहता है कि वह गोलोक में रहता है, कोई कहता है कि क्षीरसागर में शयन करता है, कोई कहता है कि कैलास पर निवास करता है। कुछ लोग चौथे आसमान पर और अन्य लोग सातवें आसमान पर उसका निवास बताते हैं। आखिर जब ईश्वर है तो कहीं-न-कहीं रहता भी होगा।

रहता क्यों नहीं ? रहता है, किन्तु कहीं या किसी एक स्थान पर नहीं रहता, ईश्वर सब स्थानों पर रहता है। कभी भी किसी ऐसे स्थान की कल्पना नहीं की जा सकती जहाँ ईश्वर न हो। वह सर्वव्यापक है। किसी स्थान-विशेष पर उसकी कल्पना करने से वह एकदेशी हो जाएगा। जो एकदेशी होगा वह सर्वव्यापक नहीं हो सकता। जो सर्वव्यापक होगा वह एकदेशी नहीं हो सकता। दोनों परस्पर-विरोधी बातें हैं। जिन लोगों ने परमात्मा को किसी एक स्थान पर प्रतिष्ठित माना है, वे प्रकारान्तर से उसके सर्वव्यापक होने का खण्डन करते हैं। किसी एक स्थान पर होने का अर्थ ही यह है कि वह उससे भिन्न स्थान पर नहीं है। जो यहाँ है और वहाँ नहीं, या वहाँ है और यहाँ नहीं, वह सर्वव्यापक कैसा ?

क्या ईश्वर साकार है ?

इसके साथ ही प्रश्न जुड़ा हुआ है कि परमात्मा साकार है या निराकार ?

ईश्वर को साकार मान लेना जितना आसान है उतना ही कठिन है उसे साकार सिद्ध करना। जो साकार है, वह सर्वव्यापक कैसे हो सकता है ? जो व्यापक नहीं, वह सर्वज्ञ भी नहीं हो सकता, सर्वान्तर्यामी भी नहीं। जिसका आकार होगा, वह परिमित होगा और परिमित वस्तु के गुण, कर्म, स्वभाव भी परिमित होंगे। परिमित वस्तु को सर्दी, गर्मी, भूख, प्यास, रोग, शोक और छेदन-भेदन का भी शिकार होना पड़ेगा। इसलिए ईश्वर न परिमित है, न ही साकार। साकार हो तो उसका कुछ-न-कुछ आकार होगा; वह लम्बा, चौड़ा गोल, चपटा—कुछ तो होगा ही; उसका आयतन और आयाम दोनों ही मानने होंगे। और आयतन और आयाम दोनों मानते ही वह भारवान् और विस्तारवान् भौतिक-पिण्डमात्र रह जाएगा।

यदि लम्बाई-चौड़ाई वाला कोई ज्यामितिक और भौतिक पिण्ड नहीं, तो क्या वह मानवाकृति वाला कोई पदार्थ है ? "God made the man in His own image"—परमात्मा ने मनुष्य को अपनी नकल पर बनाया—यह कहने वाले समझते हैं कि असल भी नकल से मिलता-जुलता ही होना चाहिए, अर्थात् परमात्मा की भी आदमी-जैसी ही शक्ल है। परमात्मा को अवतार लेने वाला

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

बताने वाले भी ईश्वर की आदमी-जैसी ही शक्ल मानते हैं,—वैसे ही आँख, कान, नाक आदि सभी अवयव। ईसा को परमेश्वर का पुत्र मानने वाले ईसाई, हजरत मुहम्मद साहब को खुदा का भेजा हुआ खास पैगम्बर मानने वाले मुसलमान, या राम और कृष्ण आदि के रूप में परमात्मा का अवतार मानने वाले पौराणिक बन्धु —ये सब इस दृष्टि से समान हैं। इन सबके मन में परमात्मा मनुष्याकृति वाला है और वैसे ही हस्तपादादि अवयवों से संयुक्त है। वेद में भले ही 'अज एक पात्' कहकर प्रभु को अजन्मा और "**सपर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरम्**" कहकर उसे शरीर-रहित और नस-नाड़ी से रहित बताया गया हो, एवं भले ही उपनिषदों में उसे "**अपाणिपादो जवनो ग्रहीता स पश्यत्यचक्षुः सः शृणोत्यकर्णः**" कहकर उसे हस्तपादादि कर्मेन्द्रियों और चक्षु-श्रोत्रादि ज्ञानेन्द्रियों से रहित बताया गया हो, किन्तु एक अन्ध-परम्परा चल पड़ी है और उसी के अनुसार लाखों-करोड़ों लोग अवतारवाद के अभिशाप से ईश्वर के मानवाकृति होने के भ्रम से निकल नहीं पाते। अवतारवाद को सबसे अधिक प्रश्रय देने वाला गीता का यह श्लोक है—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥ [अ० ४।७]

—श्रीकृष्ण जी कहते हैं कि जब-जब धर्म का ह्रास होता है और अधर्म का विकास होता है, तब-तब मैं अपने-आपको पैदा करता हूँ (शरीर धारण करके अवतार ग्रहण करता हूँ)।

गीता का उचित स्थान

यहाँ गीता के सम्बन्ध में केवल इतना कह देना पर्याप्त है कि वह स्वतन्त्र ग्रन्थ न होकर महाभारत का एक अंशमात्र है, इसलिए उसकी प्रामाणिकता भी उतनी ही है जितनी महाभारत की। इसीसे यह बात भी स्पष्ट हो जानी चाहिए कि गीता के सम्बन्ध में जो यह प्रवाद प्रचलित है कि उसमें श्रीकृष्ण के मुख से निकले हुए वचन हैं ("**या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद् विनिस्सृता**"), उसमें कोई तथ्य नहीं है। जिस तरह शेष महाभारत, जिसका असली नाम 'जय' है और जिसमें मूलतः केवल आठ हजार श्लोक थे, महर्षि व्यास की कृति है, वैसे ही गीता भी महर्षि व्यास की ही रचना है। पूछा जा सकता है कि फिर गीता की इतनी लोकप्रियता का रहस्य क्या है? इसका उत्तर हम यह देंगे कि जिस प्रकार महात्मा गांधी के सर्व-धर्म-समन्वयवाद ने सभी धर्मावलम्बियों को अविरोध भाव से एकत्र होने की प्रेरणा दी और इसीलिए लोक-संग्रह की दृष्टि से महात्मा गांधी सबसे अधिक सफल और लोकप्रिय नेता कहे जा सकते हैं, वैसे ही, गीता में सभी दार्शनिक सम्प्रदायों का ऐसा अद्भुत समन्वय है कि सभी को उसमें अपने पक्ष का पोषण मिल जाता है। इसीलिए गीता अपने चारों ओर इतना लोक-संग्रह कर सकी। दार्शनिक विवेचना

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

करने वालों को गीता में परस्पर-विरोधी बातें भी मिल जाएंगी, पर एक ही साथ 'रामाय स्वस्ति' और 'रावणाय स्वस्ति' कहने वाले के पीछे जैसे राम और रावण दोनों के अनुयायी चलने को तैयार हो जाएँगे, बहुत-कुछ वही हाल गीता का भी है।

श्लोक का अर्थ

यदि समाजशास्त्र की दृष्टि से गीता के उक्त श्लोक की व्याख्या की जाए तो उसमें एक ऐसे ऐतिहासिक सत्य का उद्घाटन है जिससे इन्कार नहीं किया जा सकता। जब-जब धर्म की ग्लानि और अधर्म के अभ्युत्थान का अर्थ यह समझा जा सकता है कि जब-जब किसी जाति का सामाजिक और राजनैतिक दृष्टि से अधः-पतन हो जाता है, तब-तब उसमें ऐसे महापुरुष पैदा होते हैं जो उस जाति को पतन के गर्त से निकालकर उन्नति के शिखर पर ले-जाने का प्रयत्न करते हैं। इतिहास की शिक्षा यही है कि कोई भी महापुरुष जन्म से महापुरुष नहीं होता, किन्तु अपने समय की परिस्थितियाँ ही उसे महापुरुष बनाती हैं। पराधीन भारत में दयानन्द, गांधी, तिलक, विवेकानन्द, रवीन्द्र, सुभाष प्रभृति जैसे नररत्न पैदा हुए, क्या वैसे नररत्नों की कल्पना स्वाधीन भारत में की जा सकती है? जितनी तीव्र क्रिया होगी, उतनी ही तीव्र प्रतिक्रिया होगी— यह विज्ञान का सिद्धान्त है। भारत का जितना तीव्र अधःपतन हुआ था उसी का यह परिणाम था कि उसने अनेक ऐसी विभूतियों को जन्म दिया जो केवल भारतवन्द्य नहीं प्रत्युत विश्ववन्द्य हैं। दुःख को इसीलिए रसायन कहा जाता है।

यदि इस श्लोक का मनोविज्ञान-परक अर्थ किया जाए तो उसे यों समझा जा सकता है कि अपने चारों ओर धर्म को घटता और अधर्म को बढ़ता देखकर किसी दृढ़संकल्प धर्मात्मा व्यक्ति के मन में यह भाव आ सकता है कि मैं अधर्म का नाश करके धर्म का राज्य स्थापित करूँगा। यह भी एक शाश्वत सामाजिक प्रवृत्ति है जो सभी धार्मिक महापुरुषों के जीवन में स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। इस प्रवृत्ति को हृदयंगम किये बिना विभिन्न देशों में पैदा हुए विभिन्न महापुरुषों के जीवन की व्याख्या की ही नहीं जा सकती। यही वैज्ञानिक दृष्टिकोण भी है। इसीलिए इस श्लोक से अवतारवाद सिद्ध करने वालों को उत्तर देते हुए ऋषि ने लिखा है कि "वेद-विरुद्ध होने से अवतार लेने की बात प्रमाण नहीं मानी जा सकती। किन्तु ऐसा हो सकता है कि श्रीकृष्ण धर्म की रक्षा करना चाहते थे कि मैं युग-युग में जन्म लेकर श्रेष्ठों की रक्षा और दुष्टों का नाश करूँ तो इसमें कुछ दोष नहीं।" **"न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नापुनर्भवम्। कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्।"** मैं राज्य नहीं चाहता, स्वर्ग नहीं चाहता, मोक्ष भी नहीं, किन्तु दुःख से सन्तप्त नर-नारियों का दुःख नाश करने के लिए इस लोक में जन्म ग्रहण करना चाहता हूँ—यही तो सत्पुरुष की असली मनोभावना है। और यह कितनी प्रबल होती है, इसकी कल्पना

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

इसीसे की जा सकती है कि दुःखीजनों के दुःख-नाश के लिए वह राज्य, स्वर्ग, मोक्ष सभी को तिलांजलि देने को तैयार है। मोक्ष न चाहने से ही यह अर्थ स्वयं निकल आता है कि मैं इस लोक में जन्म ग्रहण करना चाहता हूँ।

जैसे वेद को समझने के लिए वेद स्वयं सहायक है, वैसे ही गीता ने भी बहुत वार अपनी गुत्थियाँ अपने-आप खोल दी हैं। उक्त श्लोक में यही तो कहा है न—**'तदात्मानं सृजाम्यहम्'**—यहाँ **'आत्मानं'** शब्द का क्या अभिप्राय है, यह गीता से ही पूछना चाहिए। जिस व्यक्ति ने गीता में—**'तदात्मानं सृजाम्यहम्'** लिखा, उसी ने लिखा है : **'ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्'**—अर्थात् योगी को तो मैं अपना आत्मा ही मानता हूँ। अव **'तदात्मानं सृजाम्यहम्'** में **'आत्मानं'** शब्द के स्थान पर **'ज्ञानिनम्'** शब्द रखकर देखिए—**'तदा योगिनं सृजाम्यहम्'** का अर्थ होगा—मैं ज्ञानी को पैदा करता हूँ। (यहाँ **'सृजामि'** शब्द को **'लुप्तणिजन्त'** प्रयोग मानना होगा, अर्थात् **'सर्जयामि'** के स्थान पर **'सृजामि'** शब्द का प्रयोग हुआ है।) यदि **'सृजामि'** को **'सर्जयामि'** मानने में वाधा हो और उक्त श्लोक को श्रीकृष्ण के ही मुख का वचन मानना हो तो अर्थ यह हो जाएगा कि "योगी के रूप में मैं जन्म लेता हूँ।"

अव जरा पूरे श्लोक का अर्थ देखिए, "जब-जब धर्म की ग्लानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तव-तव मैं किसी योगी (महापुरुष) को पैदा करता हूँ।"—यह अर्थ समाजशास्त्र के दृष्टिकोण से सर्वथा सुसंगत है। या दूसरा अर्थ यह होगा—जब-जब धर्म की ग्लानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तब-तब कोई योगी (मैं) पैदा होता है (हूँ)। यह अर्थ मनोविज्ञान की दृष्टि से सुसंगत है। इससे अधिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण और क्या हो सकता है!

तर्क से अवतारवाद का खण्डन

इस प्रकार किसी प्रमाण से अवतारवाद के सिद्ध होने की सम्भावना नहीं। रही तर्क की वात, क्या तर्क से अवतार सिद्ध किया जा सकता है? यह और भी कठिन है। जव एक बार ईश्वर को सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, सर्वान्तर्यामी और निराकार मान लिया, तव तर्क से ईश्वर का अवतार कैसे सिद्ध किया जा सकता है? जो निराकार और सर्वव्यापक है, वह आकार ग्रहण करने के लिए माँ के पेट में एक-स्थानबद्ध कैसे रहेगा? फिर जो जन्म लेगा वह मरेगा भी अवश्य। जो जन्म और मरण, दोनों के चक्कर में पड़ा वह सामान्य मनुष्य ही होगा, ईश्वर नहीं। कहा जाता है कि राक्षसराज रावण और पापी कंस को मारने के लिए राम और कृष्ण के रूप में ईश्वर को अवतार लेना पड़ा। कैसी बचकानी-सी बात है! सोचिए, किसी चीज को बनाना अधिक आसान होता है या बिगाड़ना? जिस इमारत को सैंकड़ों मजदूर मिलकर महीनों तक परिश्रम करके बनाते हैं, उसी को चन्द मजदूर चन्द दिनों में गिराकर रख देंगे। मानना ही होगा कि बिगाड़ने की अपेक्षा बनाना

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कहीं कठिन कार्य है। सो रावण और कंस जैसे व्यक्तियों को, फिर वे कितने ही शक्तिशाली क्यों न हों, पैदा करने के लिए यदि ईश्वर को अवतार लेने की आवश्यकता नहीं पड़ी तो उन्हें मारने के लिए अवतार लेने की आवश्यकता क्यों पड़ती? जो ईश्वर सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय जैसे महान् कार्यों को करता है, उसको किसी एक व्यक्ति का नाश करने के लिए भी अवतार लेना पड़े, इससे तो ईश्वर का नहीं, किन्तु रावण और कंस का ही गौरव बढ़ता है। तब तो सर्वशक्तिमान् ईश्वर नहीं, रावण ही हुआ।

ईश्वर सर्वशक्तिमान् है

वाह ! जब ईश्वर को सर्वशक्तिमान् कहते हो, अर्थात् वह सब-कुछ कर सकता सकता है, तो फिर अवतार ग्रहण क्यों नहीं कर सकता ?

यह भी एक बड़ा विचित्र भ्रम लोगों में फैला हुआ है। जिस प्रकार पौराणिक बन्धु परमात्मा को सर्वशक्तिमान् कहकर **'कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुम्'** अर्थात् करे, न करे, या विपरीत करे—की सामर्थ्य ईश्वर में मानते हैं, वैसे ही किरानी और कुरानी भी मानते हैं। निस्सन्देह पुराणियों से ही यह मनोवृत्ति किरानी और कुरानियों में गई है। जब ईसाई या मुसलमान कहते हैं कि हमारे पैगम्बर पर ईमान लाओ और उसकी सिफारिश से खुदा तुम्हारे सब गुनाह माफ कर देगा, तब वे भी परमात्मा की सर्वशक्तिमत्ता का यही अर्थ समझते हैं कि ईश्वर सब-कुछ कर सकता है तो पापों को क्षमा क्यों नहीं कर सकता ? प्रायः आर्यसमाज के साथ अन्य मताव-लम्बियों का जब शास्त्रार्थ होता है तब बहुधा इस शब्द पर खूब विवाद होता है। परन्तु वे यह नहीं समझते कि ईश्वर की महत्ता सृष्टि के नियमों का उल्लंघन करने में नहीं, किन्तु सबसे उन नियमों का पालन करवाने में है। यदि नियामक ही नियमों का उल्लंघन करने लगे तो वह नियामक कहाँ रहा ?

यों समझिए—राष्ट्र का संविधान एक बार बन गया, अब उस संविधान की अवहेलना न राजा कर सकता है, न प्रजा। यदि कोई भी उसका उल्लंघन करेगा तो उच्चतम न्यायालय उसे तुरन्त अवैध ठहरा देगा और अवैध आचरण करने वाले का स्थान जेल के अन्दर होगा। यदि कर्म करने की स्वतन्त्रता के अधिकार की दुहाई चोर-डाकू भी देने लगें तो किसी भी राज्य में न्याय और व्यवस्था कायम नहीं रह सकती। इसी प्रकार **'विषमप्यमृतं क्वचिद् भवेदमृतं वा विषमीश्वरेच्छया'** —ईश्वर की इच्छा से चाहे जब अमृत विष बन जाए या विष अमृत बन जाए; तब संसार के जितने भी डॉक्टर हैं वे किसी भी रोग का उपचार न कर सकें। सृष्टि-रचना का, सृष्टि में उत्पन्न हुए प्रत्येक पदार्थ का एक विशेष नियम अथवा प्रयोजन है; उसी को सृष्टि-रचना का संविधान कहिए। सृष्टि के आदि में स्वयं ईश्वर ने ही वह संविधान बना दिया। उस संविधान का उल्लंघन न ईश्वर स्वयं

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कर सकता है और न ही उसकी प्रजा। राष्ट्रों के संविधान में सरकारों की इच्छा के अनुकूल संशोधन भी होते रह सकते हैं, किन्तु ईश्वर के सृष्टि-रचना के संविधान में संशोधन भी नहीं हो सकता। जो है, सो है। क्योंकि संशोधन अपूर्णता का द्योतक है, और ईश्वर के संविधान में अपूर्णता हो नहीं सकती, इसलिए उसमें संशोधन भी नहीं हो सकता। ईश्वरीय संविधान तो सदा एक-जैसा ही रहेगा। ईश्वर की सार्थकता इसी में है कि जितने ग्रह-नक्षत्र हैं और चराचर जगत् है, वे सब उसी के बनाए नियमों में गति करते रहें। यदि कहीं नियम का उल्लंघन हो गया तो सृष्टिचक्र में व्याघात पड़ जाएगा!

उदाहरण के लिए गणित का नियम है, दो और दो चार होते हैं। यह नियम सार्वत्रिक है; इसे न मैं तोड़ सकता हूँ, न ईश्वर तोड़ सकता है। मैं तोड़ूँगा तो मुझे व्यवहार में कठिनाई होगी, यदि परमात्मा तोड़ेगा तो उसके समस्त सृष्टिचक्र में व्याघात उपस्थित होगा। ऐसे ही कार्य-कारण का सिद्धान्त है, अर्थात् कारण के बिना कार्य नहीं हो सकता। इसे जैसे मैं नहीं तोड़ सकता, वैसे ही परमात्मा भी नहीं तोड़ सकता। इस नियम के टूटने पर अणुओं के घात-संघात और पदार्थों की क्रिया-प्रतिक्रिया में अव्यवस्था हो जाएगी और Cosmos के स्थान पर बहुत बड़ा Chaos उपस्थित हो जाएगा।

सर्वशक्तिमान् का अर्थ

कभी-कभी बड़े मनोरंजक प्रश्न भी इसी सिलसिले में किये जाते हैं। जैसे, परमात्मा अपने-जैसा दूसरा परमात्मा बना सकता है या नहीं? यदि कहें कि नहीं बना सकता तो वह सर्वशक्तिमान् नहीं रहा। यदि कहें कि बना सकता है, तो ईश्वर एक नहीं रहा, दो हो गए। और जो दूसरा ईश्वर बनेगा भी, वह हू-ब-हू पहले जैसा नहीं होगा, क्योंकि वह नकल ही होगी। यदि नकल को असल से बिलकुल मिला भी दिया, तब भी दूसरा बना हुआ ईश्वर पहले ईश्वर से हजारों साल आयु में छोटा होगा, क्योंकि पहला ईश्वर सृष्टि के आदिकाल से चला आ रहा है और दूसरा ईश्वर उसके हजारों सालों बाद प्रश्नोत्तर-काल के समय बनाया गया। इसी तरह का दूसरा प्रश्न है—जैसे बच्चे खेल में मिट्टी-गारे से इतनी बड़ी ईंट बना लेते हैं कि वह उनसे भी नहीं उठती, क्या ऐसे ही ईश्वर भी इतनी बड़ी ईंट बना सकता है जो उससे भी न उठे? यदि कहें कि नहीं बना सकता, तो वही न बना सकने की अशक्ति वाली बात आ गई। यदि कहें कि बना सकता है तो, न उठा सकने की बात आ गई। सर्वशक्तिमान् वह दोनों तरह नहीं रहा—न हाँ कहने से, न ना कहने से। एक तीसरा प्रश्न है—मेरी इच्छा के विरुद्ध यदि मेरा नौकर काम करे तो मैं उसे अपने घर से बाहर निकाल दूंगा, किन्तु यदि मैं ईश्वर की इच्छा के विरुद्ध आचरण करूँ तो क्या परमात्मा मुझे अपने घर से बाहर निकाल सकता है? यदि

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ना कहे तो सर्वशक्तिमान् नहीं रहा, यदि हाँ कहे तो सर्वव्यापक नहीं रहा। आखिर परमात्मा मुझे अपने घर से बाहर निकालेगा कहाँ ? क्या कहीं ऐसा स्थान है जहाँ परमात्मा न हो ?

इसी को कहते हैं **'उभयतः पाशा रज्जुः।'**—न हाँ कहने से छुटकारा मिले, न ना कहने से--दोनों ओर से गले में फन्दा। इसी प्रकार से अन्य अनेक मनोरंजक प्रश्न किये जा सकते हैं। इन सब फाँसियों से बचने का केवल वही उपाय है जो ऋषि ने बताया है; अन्य कोई नहीं। अर्थात् सर्वशक्तिमान् का अर्थ यह नहीं कि परमात्मा सब-कुछ कर सकता है, बल्कि उसका अर्थ केवल इतना है कि परमात्मा के करने के जो काम हैं, अर्थात् सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय–इनके करने में वह स्वयं इतना समर्थ है कि उसे किसी अन्य की सहायता की अपेक्षा नहीं।

सर्वज्ञ और त्रिकालदर्शी

सर्वशक्तिमान् के साथ ही दूसरा शब्द आता है—सर्वज्ञ। यदि परमात्मा सर्वज्ञ है अर्थात् वह सब-कुछ जानता है, तो वह अपना अन्त भी जानता होगा ? यह प्रश्न भी शास्त्रार्थोपयोगी ही है। ज्ञान उसको कहते हैं जो यथार्थ हो, अर्थात् जो चीज जैसी हो उसे वैसा ही जानना ज्ञान है; इसके विपरीत अज्ञान है। ईश्वर क्योंकि अनन्त है, इसलिए उसे अनन्त समझना ही ज्ञान है; इसके विरुद्ध समझना अर्थात् परमात्मा को सान्त समझना या नाशवान् भौतिक पदार्थों को अनन्त समझना अज्ञान है। योगदर्शन के अनुसार **'क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः'**–ईश्वर अविद्यादि क्लेशों से रहित और इष्ट-अनिष्ट या मिश्रित फलदायक कर्मों की वासना से रहित और सब जीवों से विशिष्ट है, इसलिए सामान्य जीवों की तरह मरण द्वारा परमात्मा का जन्मान्तर नहीं होता। इस प्रकार उसके सम्बन्ध में यह प्रश्न नहीं बनता कि वह अपना अन्त-जानता है या नहीं।

सर्वज्ञ का एक अर्थ है त्रिकालदर्शी, अर्थात् भूत, वर्तमान और भविष्यत् तीनों कालों को एक-साथ प्रत्यक्ष देखने वाला। यहाँ यह प्रश्न होता है कि ईश्वर यदि त्रिकालदर्शी है तो वह यह भी जानता है कि जीव भविष्य में क्या करेगा। इसमे जीव का भावी कर्म ईश्वर के ज्ञान से बँध (Conditioned) गया। फिर जीव स्वतन्त्र कहाँ रहा ? जीव भविष्य में जो कर्म करेगा, यदि परमात्मा को उसका पहले से ही ज्ञान है, तो जीव ने एक तरह से वही काम किया जो ईश्वर ने अपने ज्ञान द्वारा उसके लिए पहले से निश्चित कर दिया, फिर किसी पाप-कर्म के लिए बेचारे जीव को दण्ड क्यों ? यदि दण्ड मिलना ही हो तो परमात्मा को ही मिले। न परमात्मा वैसा जानता, न जीव वैसा कर्म करता।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

एकरस काल

यहाँ भी थोड़ा-सा भ्रम है। काल के जो तीन विभाग हैं--भूत, वर्तमान और भविष्यत्--ये केवल आपेक्षिक परिभाषाएँ (Relative Terms) हैं। मुझे अपने घर की छत पर चढ़कर जितनी दूर तक का प्रदेश दिखाई देता है, यदि मैं हवाई जहाज में बैठकर देखूं तो उसकी अपेक्षा बहुत अधिक विस्तृत प्रदेश का अवलोकन कर सकता हूँ। उपग्रह में बैठकर अन्तरिक्ष की यात्रा करने वाले गागारिन और तेरेशकोवा जैसे यात्रियों को सारी पृथिवी भी एक-साथ दीख जाती है। जैसे समीप और दूर की परिभाषाएँ सापेक्ष हैं, वैसे ही भूत और भविष्य की परिभाषाएँ भी सापेक्ष हैं। देश (Space) की दृष्टि से जिसे समीप और दूर कहते हैं, उसी को काल (Time) की दृष्टि से वर्तमान तथा भूत और भविष्यत् कहते हैं।

यदि दार्शनिक दृष्टि से विश्लेपण करने बैठ ही जाएँ तो काल के उक्त तीनों खण्डों का अस्तित्व सिद्ध करना कठिन हो जाएगा। देखिए—भूत क्या है? जो वर्तमान बीत चुका है, वही भूत है। और जो वर्तमान आगे आने वाला है, वही भविष्यत् है। इस तरह भूत और भविष्यत् दोनों वर्तमान पर आधारित हैं। एक तरह से यह कहा जा सकता है भूत और भविष्यत् वर्तमानरूपी नदी के दो तट हैं। यदि नदी नहीं, तो दोनों तट भी नहीं रहेंगे। अब वर्तमान पर विचार करिए कि वह क्या है? वर्तमान का कुछ अंश भूत है और कुछ अंश भविष्य—जिस क्षण को आप वर्तमान कहना चाहते हैं उसका भी कुछ अंश बीत चुका है और कुछ अंश आगे आने वाला है—आपके कहते-कहते और आपके पकड़ते-पकड़ते वर्तमान का क्षण फिसलकर भूत और भविष्यत् की कोटि में पहुँच जाता है, अर्थात् वर्तमान वर्तमान नहीं रहता। और जब आपका वर्तमान ही टिक नहीं पाता, तब उस वर्तमान के आधार पर चलने वाले आपके भूत और भविष्यत् कहाँ टिकेंगे? जब वर्तमान की ही नदी सूखी पड़ी है तब उसके भूत और भविष्यत् नामक दोनों तटों पर हरियाली कहाँ से आएगी? इसलिए कहना चाहिए काल अखण्ड और एकरस है। भूत और भविष्यत् की परिभाषाएँ केवल अल्पज्ञ जीव के लिए हैं। जीवों के कर्मों की अपेक्षा से ही परमात्मा को त्रिकालज्ञ या त्रिकालदर्शी कहा जा सकता है। स्वतः परमात्मा के लिए त्रिकाल नहीं हैं—केवल एक ही महाकाल है और वह सदा उसके लिए वर्तमान ही है।

जीव कर्म करने में स्वतन्त्र

इससे न जीव के कर्म करने की स्वतन्त्रता में बाधा आती है, न ही परमात्मा की सर्वज्ञता में। जैसा कर्म जीव करता है, वैसा ही परमात्मा जानता है, और वैसा ही वह फल देता है। परमात्मा का जैसे जीव के कर्म का ज्ञान अनादि है, वैसे ही

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जीव द्वारा किये गए कर्म के फल का ज्ञान भी अनादि है। ये दोनों ज्ञान उसके सत्य हैं। सार-रूप से यह कहा जा सकता है कि जीव अल्पज्ञ केवल वर्तमान को जानने वाला और कर्म करने में स्वतन्त्र है, परन्तु फल भोगने में परतन्त्र है; और परमात्मा सर्वज्ञ—सब कालों को जानने वाला और जीव को कर्मानुसार फल देने में स्वतन्त्र है। परमात्मा की कर्मानुसार फल देने की स्वतन्त्रता भी उच्छृङ्खलता नहीं है, अर्थात् न तो वह पाप क्षमा करता है, न ही पुण्य के लिए दण्ड देता है और न ही पाप को पुरस्कृत करता है। जैसा जिसका कर्म, वैसा उसका फल। परन्तु जीव यदि यह चाहे कि मेरे पाप-कर्म का फल मुझे न मिले, जैसा कि आमतौर से लोग चाहते हैं, तो यह असम्भव है। कर्म का फल तो भोगना ही होगा! किस कर्म का कौन-सा फल मिलेगा—यह ईश्वराधीन है और ईश्वर अपने बनाए संविधान के अधीन है।

अद्वैतवाद का खण्डन

इस समुल्लास में ऋषि ने जीव और ब्रह्म की एकता का प्रतिपादन करने वाले अद्वैतवादियों का जिस विद्वत्तापूर्ण ढंग से खण्डन किया है, वह भी देखते ही बनता है। सुपठित भारतीय विद्वानों और साधु-सम्प्रदाय में अद्यापि इस वाद की बहुत मान्यता है, परन्तु जिस आधार पर जीव और ब्रह्म की एकता स्थापित की जाती है, जैसे वह आधार निस्सार है वैसे ही उनके तर्क भी। परमात्मा के एकत्व के प्रति जो बौद्धिक रुझान आजकल दृष्टिगोचर होता है, उसी का यह परिणाम है कि जीव और ब्रह्म को एक बताने वाली फिलासफी आजकल बुद्धिवादी लोगों को अपनी ओर खींचती है। अद्वैतवादी जिन चार वाक्यों पर सबसे अधिक जोर देते हैं, वे चार वाक्य ये हैं—

प्रज्ञानं ब्रह्म ॥१॥ अहं ब्रह्मास्मि ॥२॥ तत्त्वमसि ॥३॥ अयमात्मा ब्रह्म ॥४॥

इन चारों वाक्यों को वे वेद-वाक्य या महाकाव्य बताते हैं; परन्तु इन चारों में से एक भी वेद-वाक्य नहीं है। महावाक्य तो ये हैं ही नहीं। किसी सत्यशास्त्र ने इनको महावाक्य नहीं लिखा, और इनके कलेवर से इनको महावाक्य कह कौन सकता है? इनमें से पहला वाक्य ऐतरेय आरण्यक का है, दूसरा वाक्य बृहदारण्यक का है, तीसरा छान्दोग्य उपनिषद् का है और चौथा माण्डूक्योपनिषद् का है।

प्रज्ञानं ब्रह्म का अर्थ है—ब्रह्म ज्ञानस्वरूप है या प्रकृष्ट ज्ञानवान् है। यह अर्थ सुसगत है, इसमें कोई विप्रतिपत्ति नहीं। परन्तु ब्रह्म के ज्ञानस्वरूप होने से यह अर्थ कहाँ से निकल आया कि ब्रह्म के सिवाय और किसी में ज्ञान का लेश भी नहीं है? जीव ज्ञानवान् है, परन्तु वह अल्पज्ञ है। ब्रह्म सर्वज्ञ है, परन्तु सर्वज्ञ ब्रह्म की सत्ता स्वीकार करने से अल्पज्ञ जीव की सत्ता का निषेध नहीं हो सकता।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

'अहं ब्रह्मास्मि' का अर्थ

अहं ब्रह्मास्मि का अर्थ यह नहीं है कि मैं ब्रह्म हूँ, जैसा कि सामान्यतया समझा जाता है। परन्तु इसका अर्थ है 'मैं ब्रह्मस्थ हूँ।' पूछा जाएगा कि 'ब्रह्मास्मि' का अर्थ 'ब्रह्मस्थ हूँ—यह कैसे कर दिया गया? इसके लिए साहित्य-शास्त्र के गम्भीर अध्ययन की आवश्यकता है। साहित्य का शास्त्रीय विवेचन करने वाले मम्मट के 'काव्य प्रकाश' नामक ग्रन्थ में इस प्रकार के उदाहरण दिये गए हैं, जैसे **'मञ्चाः क्रोशन्ति'**—अर्थात् मञ्च या मचान पुकारते हैं। परन्तु मचान तो जड़ हैं—वे कैसे बोल सकते हैं? तब यहाँ मञ्च के पुकारने के मुख्य अर्थ का बाध होकर तात्स्थ्योपाधि से यह अर्थ निकलता है कि **'मञ्चस्थाः क्रोशन्ति'** अर्थात् मचान पर बैठे हुए लोग पुकारते हैं। कान में आने वाली आवाज की दूरी बताने के लिए यहाँ 'मचान पर बैठे मनुष्य' न कहकर संक्षेप के लिए केवल 'मचान' ही कह दिया। ऐसे ही एक उदाहरण है—**'गंगायां घोषः'** अर्थात्—गंगा में गाँव है' (घोष=गाँव)। नदी के अन्दर कोई गाँव कैसे हो सकता है? नदी में होगा तो बह न जाएगा? इसलिए यहाँ भी मुख्यार्थ का बाध होकर **तात्स्थ्य** वा **तत्सहचरितोपाधि** से यह अर्थ होता है कि 'गंगा-तट पर गाँव है।' नदी के सहचारी होने से उस गाँव की शीतत्व-पावनत्वादि विशेषताओं को बताने के लिए 'गंगा-तट पर' न कहकर सीधा **'गंगायां=गंगा में'** कह दिया गया। केवल काव्यप्रकाश के उदाहरणों के बल पर ही ऐसा अर्थ नहीं किया गया है, किन्तु साहित्य में पदे-पदे ऐसे उदाहरण मिलते हैं। और तो और, आम बोलचाल में भी दिन-रात हम इस प्रकार के प्रयोग करते हैं। हम पूछते हैं, "यह सड़क किधर जाती है?" भोले मुसाफिर! सड़क कहीं नहीं जाती, यह तो वहीं-की-वहीं रहती है। सड़क जड़ है, परन्तु सड़कस्थ लोग आते-जाते हैं। है न वही तात्स्थ्योपाधि? या हम कहते हैं—'दीवार के भी कान होते हैं।' परन्तु क्या दीवार के कभी कान हो सकते हैं? यहाँ तत्सहचरितोपाधि से अर्थ यह होगा कि 'दीवार का सहचारी व्यक्ति तो कहीं कोई कान लगाकर हमारी बात नहीं सुन रहा?' यदि साहित्य में इस प्रकार अर्थ न किया जाए तो अनर्थ हो जाए।

पूछा जा सकता है कि ब्रह्मस्थ तो सभी पदार्थ हैं, फिर जीव को ही ब्रह्मस्थ क्यों कहते हो? उसका उत्तर यह है कि ब्रह्म से जैसा साधर्म्य और निकटता जीव की है वैसी अन्य किसी पदार्थ की नहीं, और मोक्ष के समय तो जीव ब्रह्म का सहचारी होता ही है, इसलिए जीव को ही यह कहना शोभा देता है कि 'मैं ब्रह्मस्थ हूँ।'

तीसरा वाक्य है **'तत्त्वमसि'**। इस वाक्य का अर्थ दो तरह से किया जाता है: **एक तो यह कि ब्रह्म (तत्), तू जीव (त्वम्) है (असि)।** या हे जीव! तू (त्वम्) **वह ब्रह्म (तत्) है (असि)।** परन्तु ये दोनों ही अर्थ असंगत हैं, क्योंकि तत् शब्द से ब्रह्म का अर्थ लेना ठीक नहीं। जिस छान्दोग्य उपनिषद् का यह वचन है उसमें

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

इससे पूर्व ब्रह्म शब्द का पाठ नहीं है, इसलिए इस शब्द की अनुवृत्ति नहीं आ सकती। इस अनुवृत्ति के झगड़े की आवश्यकता भी नहीं है, क्योंकि स्वयं छान्दोग्य उपनिषद् ने **'तत्त्वमसि'** वाक्य की व्याख्या कर दी है। उपनिषद् ने तत् का अर्थ किया है **'तदात्मकः'** अर्थात्—**'उस परमात्मा वाला'**। जब इससे भी सन्तोष नहीं हुआ तो इसके लिए दूसरा शब्द दिया **'तदन्तर्यामी'**—वह अन्तर्यामी है जिसमें; इस प्रकार **'तत्त्वमसि'** का अर्थ हुआ **'तदन्तर्यामी त्वमसि'** अर्थात्—तू उस परमात्मा से युक्त है। यही अर्थ उपनिषद् का अविरोधी है। इस अर्थ से जीव और ब्रह्म की एकता नहीं बनती।

चतुर्थ वाक्य है **'अयमात्मा ब्रह्म'**। इसका स्पष्ट अर्थ यही है कि 'यह परमात्मा ब्रह्म है।' परमात्मा को तो ब्रह्म हम भी कहते ही हैं, इसलिए इस अर्थ में जीव और ब्रह्म की एकता नहीं बन सकती। परन्तु यदि आत्मा का अर्थ परमात्मा न लेकर केवल जीवात्मा ही लिया जाए, तब उसे यों समझना होगा कि मोक्षावस्था में पहुँचने पर कोई योगी कहता है **'अयमात्मा ब्रह्म'** अर्थात्—मेरा जीवात्मा ब्रह्मस्थ या ब्रह्म का सहचारी है, या ब्रह्म के अनुभव में इतना निमग्न है कि हम अविरोधी या एक-अवकाशस्थ हो गए। तीसरा अर्थ यह भी हो सकता है कि समाधिदशा में परमात्मा का साक्षात्कार होने पर योगी कहता है कि यह जो मुझमें व्यापक है वही ब्रह्म सर्वत्र व्यापक है। इन तीनों अर्थों में से किसी में भी वेदान्त-प्रतिपादित जीव-ब्रह्म की एकता सिद्ध नहीं होती।

जीव और ब्रह्म एक नहीं

जब साहित्य की चर्चा आ गई तो प्रतिपक्षी ने कहा – लो, साहित्य से ही जीव और ब्रह्म की एकता स्थापित करते हैं। साहित्यशास्त्र में तीन शक्तियाँ मानी जाती हैं—अभिधा, लक्षणा और व्यंजना। सो लक्षणा का एक प्रकार है जिसे भाग-त्याग-लक्षणा कहते हैं। इसमें कुछ अंश छोड़कर और कुछ अंश ग्रहण करके पदार्थ का वर्णन किया जाता है, जैसे **'सोऽयं देवदत्तो य उष्णकाले काश्यां दृष्टः स इदानीं प्रावृट् समये मथुरायां दृश्यते'** अर्थात्—यह वही देवदत्त है जिसे गर्मियों में काशी में देखा था और अब वह बरसात में मथुरा में दिखाई दे रहा है। वैसे जो चीज काशी में देखी थी वह मथुरा में कैसे हो सकती है? और गर्मियों में जो चीज थी वही बरसात में कैसे हो सकती है? अवस्थान्तर और स्थानान्तर होने से वस्त्वन्तर भी होना चाहिए। परन्तु यहाँ वाक्य के काशी और उष्णकाल वाले भाग का त्याग करके और देवदत्त के शरीरमात्र को लक्ष्य करके, **भाग-त्याग-लक्षणा** के अनुसार हम देवदत्त को मथुरा में देखते ही पहचान लेते हैं कि यह तो वही देवदत्त है जिसे गर्मियों में काशी में देखा था। इसी प्रकार देश, काल, माया, उपाधि आदि जैसे ब्रह्म के साथ लगे हुए हैं वैसे ही जीव के साथ भी देश, काल, माया, उपाधि (अविद्या,

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अल्पज्ञता) लगे हुए हैं। इन सब दृष्टियों से तो जीव और ब्रह्म में अभेद है ही, क्योंकि ये सब बातें दोनों में एक-सी (Common) हैं। परन्तु ईश्वर सर्वज्ञ है और जीव अल्पज्ञ है—दोनों के इन दोनों भेदपरक वाच्यार्थों को छोड़कर, भाग-त्याग-लक्षणा के अनुसार हम केवल चेतनमात्र को लक्ष्य करते हैं। क्या इस तरह दोनों की एकता नहीं बन सकती? इसके अतिरिक्त जैसे ब्रह्म सत्-चित्-आनन्दस्वरूप है वैसे ही जीव के भी अस्ति, भाति और प्रिय रूप हैं। इससे भी दोनों की एकता अर्थात् अद्वैत-सिद्धि क्यों नहीं हो सकती?

ब्रह्मसूत्रों के शारीरक (शारीरिक नहीं) भाष्य के अनुसार वेदान्ती लोग छः पदार्थों को अनादि मानते हैं—एक जीव, दूसरा ईश्वर, तीसरा ब्रह्म, चौथा जीव और ईश्वर का भेद, पाँचवाँ अविद्या और छठा अविद्या और चेतन का योग। परन्तु इनमें से केवल ब्रह्म ही अनादि और अनन्त है, शेष पाँच अनादि किन्तु सान्त हैं, जैसेकि नैयायिकों का प्रागभाव होता है। इन पाँचों का आदि किसी को विदित नहीं, इसलिए ये अनादि हैं; किन्तु अज्ञान समाप्त होते ही इन पाँचों का अन्त हो जाता है, इसलिए सान्त हैं; परन्तु ब्रह्म का न आदि है, न अन्त, इसलिए वह अनादि और अनन्त दोनों है। संकोच से यह कहा जा सकता है कि वेदान्तियों का यह सब वाग्-जाल मात्र है। वास्तव में तो उनके मत में ब्रह्म और अविद्या दो ही मुख्य हैं और इन दो में ही उनके छहों पदार्थों का अन्तर्भाव हो जाता है। अब प्रश्न यही है कि नित्य शुद्ध-बुद्ध-मुक्त-स्वभाव और सर्वव्यापक ब्रह्म से अविद्या का सम्पर्क हुआ ही कैसे? यदि स्वभाव से ही अविद्या का सम्पर्क मानें तो ब्रह्म शुद्ध नहीं रहा; यदि स्वभाव के बिना सम्पर्क मानें तो उसकी आवश्यकता ही क्यों पड़ी? जब तक अविद्या और ब्रह्म का योग नहीं, तब तक कारणोपाधि ईश्वर कार्योपाधि जीव भी कैसे बनेंगे? फिर उन्होंने ब्रह्म और अविद्या दोनों को अनादि मान लिया, उनका भी अद्वैत कैसे रहा? वह द्वैत न हो गया? ब्रह्म और अविद्या इन दोनों को साथ-साथ मानना तो बहुत-कुछ वैसी ही कल्पना है जैसे ईसाई या मुसलमान खुदा और शैतान को साथ-साथ मानते हैं। वहाँ जैसे शैतान खुदा को वरगलाता है, वैसे ही यहाँ अविद्या ब्रह्म को विकृत करती है।

जहाँ तक भाग-त्याग-लक्षणा के अनुसार ब्रह्म और जीव के समानता-द्योतक लक्षणों को लेकर और भेदपरक लक्षणों को छोड़कर दोनों की एकता सिद्ध करने का प्रयत्न है, उसके बारे में यही कहा जा सकता है कि यदि इस तरह एकता स्थापित करने लगेंगे तो संसार में अव्यवस्था फैल जाएगी। यह तो वैसा ही हेत्वा-भास है जैसे 'जानवर उसको कहते हैं जिसमें जान हो, और आदमी में क्योंकि जान है इसलिए आदमी भी जानवर है।' क्या जान होने की समानता-मात्र से आदमी और जानवर का एकत्व प्रतिपादित किया जा सकता है? जैसे चींटी मुख से खाती, आँख से देखती और पाँवों से चलती है, वैसे ही सब आदमी भी करता है, इसलिए

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

क्या चींटी और आदमी को एक माना जाएगा ? देखना यह है कि दोनों पदार्थों में साधर्म्य कितना है और वैधर्म्य कितना ? इसी साधर्म्य के आधार पर प्राणियों का जलचर, स्थलचर और स्तन्यपायी आदि के रूप में वर्गीकरण होता है। यह ठीक है कि ब्रह्म और जीव दोनों में चेतनता या साधर्म्य है, परन्तु उनमें वैधर्म्य कितना है, इस पर भी कभी विचार किया है ? ब्रह्म सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अपरिच्छिन्न, अनन्त ज्ञान-बल-क्रिया-सम्पन्न आनन्दस्वरूप है, परन्तु जीव अल्पज्ञ, अल्पशक्ति-सम्पन्न, परिच्छिन्न और इच्छा-द्वेष-प्रयत्न-सुख-दुःखादि से युक्त है, इसलिए जीव और ब्रह्म एक नहीं हो सकते।

अद्वैतवाद का मूल—बौद्ध दर्शन

इसी स्थान पर यदि दर्शनशास्त्र के इतिहास की दृष्टि से शंकराचार्य के अद्वैतवाद के सिद्धान्त पर विचार कर लिया जाए तो शायद अनुचित न हो। शंकराचार्य अद्वैतवाद के प्रवर्तक माने जाते हैं। अद्वैतवाद के सिद्धान्त पर जो लोग इस्लाम और सूफी सम्प्रदाय की छाप देखते हैं, उनका भ्रम निवारण करने के लिए भी अद्वैतवाद का ऐतिहासिक विवेचन अभीष्ट है। परिवर्तनशील जगत् का आदिकारण और यथार्थ तत्त्व ब्रह्म है, यह तो वेद और उपनिषदों ने प्रतिपादित कर दिया था, परन्तु यह जगत् सर्वथा असत्य है, यह स्थापना शंकर की ही है। परन्तु शंकर के इस मायावाद या अद्वैतवाद का जनक है बौद्ध दार्शनिक नागार्जुन का शून्यवाद। भारत में चिरकाल से यह जनश्रुति चली आ रही है कि शंकर प्रच्छन्न बौद्ध है और उसका अद्वैतवाद प्रकारान्तर से बौद्ध दर्शन का ही उद्रेक है। विज्ञानभिक्षु ने सांख्य-प्रवचन-भाष्य की भूमिका में पद्मपुराण का यह श्लोक उद्धृत किया है—'**मायावादमसच्छास्त्रं प्रच्छन्नं बौद्धमेव तु।**' मायावाद असत् शास्त्र है और वह छिपा हुआ बौद्ध दर्शन ही है।

वेदान्ती अद्वैत तत्त्व की स्थापना करने के लिए जिस प्रकार सत्ता का निरूपण पारमार्थिक और व्यावहारिक दो स्तरों पर करते हैं, 'सत्ता' का इस प्रकार दो स्तरों पर भेद सबसे पहले नागार्जुन ने ही किया था। नागार्जुन जिसे 'शून्य' (Absolute) कहता है, उसी को शंकराचार्य 'ब्रह्म' कहते हैं। वस्तु-तत्त्व का सर्वथा लोप करके सम्पूर्ण विश्व को 'निःस्वभाव' और 'शून्य रूप' से प्रस्तुत करने वाला यह शून्यवाद सर्वथा निषेधवाद (Nihilism) नहीं है, किन्तु शून्यवाद का कहना है कि समस्त दृश्यमान जगत् परस्पर सापेक्ष है, इसलिए वह किसी निरपेक्ष (Absolute) तत्त्व की ओर इंगित करता है। यह निरपेक्ष तत्त्व ही 'शून्य' है। यह शून्य Nothing नहीं है, Something है। परन्तु वह Something केवल शून्य है। इस शून्यवाद को एक तरह से '**अद्रव्य का सिद्धान्त**' (No-Substance Theory) कह सकते हैं—यही बौद्धों का अनात्मवाद है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

शून्य को समझने के लिए एक दृष्टान्त दिया जा सकता है। ज्यामिति पढ़ाने वाला शिक्षक कहता है कि बिन्दु (Point) उसको कहते हैं जिसमें न लम्बाई हो, न चौड़ाई; या सरल रेखा (Straight line) उसको कहते हैं जिसमें केवल लम्बाई-ही-लम्बाई हो, चौड़ाई न हो। परन्तु क्या कभी ऐसा बिन्दु कागज पर बनाया जा सकता है जिसकी न लम्बाई हो, न चौड़ाई ? या, क्या ऐसी सरल रेखा कभी खींची जा सकती है जिसकी केवल लम्बाई हो और चौड़ाई न हो ? जब भी कोई बिन्दु बनेगा, उसकी कुछ-न-कुछ लम्बाई भी होगी, कुछ-न-कुछ चौड़ाई भी। ऐसे ही, जब भी सरल रेखा बनेगी, उसकी कुछ-न-कुछ चौड़ाई अवश्य होगी। परिभाषा के अनुसार बिन्दु या सरल रेखा की सत्ता असम्भव है। परन्तु इसी कारण न बिन्दु की सत्ता से इन्कार किया जा सकता है, न सरल रेखा की सत्ता से।

इसी तरह जितने भी द्रव्य हैं वे देश (Space) की दृष्टि से फैले हुए (Extended) हैं और काल (Time) की दृष्टि से स्थिरता (Duration) वाले हैं। संसार के किसी भी पदार्थ की कल्पना हम नहीं कर सकते जिसे देश और काल ने परिच्छिन्न न कर रखा हो। यही आइन्स्टीन का सापेक्षवाद है। प्रत्येक वस्तु देश और काल की अपेक्षा से है, क्योंकि बिना देश और काल के हम किसी पदार्थ की कल्पना कर ही नहीं सकते। जैसे देश और काल ही असली उपाधि या माया हो, जो किसी भी पदार्थ के पैदा होते ही उसे घेर लेती हो। परन्तु यथार्थ तत्त्व वह है जो काल और देश के बन्धन से परे है; इनसे निरपेक्ष होने के कारण ही उसे 'Absolute' कहना होगा – वही शून्य है। इस प्रकार शून्य की व्याख्या होगी— ऐसा तत्त्व जो समय की दृष्टि से (Temporally) लम्बाई में (Vertically) और देश की दृष्टि से चौड़ाई में (Horizontally) सब ओर से फटा हुआ हो, अर्थात् वह निरवयव है, उसमें अनेक अवयवों में रहने वाला कोई अवयवी द्रव्य नहीं। वह शून्य Positive चीज है, Negative नहीं।

जो व्याख्या शून्य की है, वही व्याख्या ब्रह्म की है। जिस प्रकार उपर्युक्त विवेचन शून्य पर घटित होता है, ठीक उसी प्रकार वह विवेचन ब्रह्म के साथ भी ज्यों-का-त्यों अक्षरशः घटित होता है। इस तरह ऐसा लगता है कि वैदिक दर्शनों का खण्डन करने के लिए और अपने अनात्मवाद की स्थापना के लिए बौद्धों ने जो सूक्ष्म और गम्भीर दार्शनिक मन्थन किया, वही धारा 'आधार-सामग्री' (Raw Material) के रूप में शंकर को मिल गया और शंकर ने बौद्धों का खण्डन करने के लिए उस सब सामग्री को ज्यों-का-त्यों अपना लिया। इतना ही नहीं, प्रत्युत शंकर ने उस समस्त दार्शनिक सामग्री को अपना रंग (Finish) देकर उन्हीं के हथियारों से उन्हीं के तर्कजाल को काट दिया। जिन तर्कों से वे अनात्मवाद की स्थापना करते थे, उन्हीं तर्कों से शंकर ने आत्मवाद की स्थापना की। बौद्ध जिस निरपेक्ष तत्त्व को 'शून्य' कहते थे, उसी निरपेक्ष तत्त्व को शंकर ने ब्रह्म कहा।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

परन्तु बौद्धों की शून्यवाद की फिलॉसफी में अपनी अद्वैतवाद की कलम लगाने से शंकर को माया, उपाधि और अविद्या का भी अनादित्व स्वीकार करना पडा। इसके बिना उसके तथाकथित ब्रह्म का मण्डन ही न बन पाता।

यह थोड़ा-सा विवेचन हमने इसीलिए किया है जिससे कतिपय आधुनिक राष्ट्रीय नेताओं और उच्च पदस्थ विद्वानों को यह कहने का अवसर न रहे कि शंकर के अद्वैत पर इस्लाम के एकेश्वरवाद की छाया है। शंकर ने इस्लाम से कुछ नहीं लिया; जो कुछ लिया वह बौद्धों से लिया और यह बात भारतीय दार्शनिक परम्परा के इतिहास में समीचीनतया ठीक बैठती है।

ईश्वर की वैज्ञानिक परिभाषा

यों ब्रह्मसूत्र में **'जन्माद्यस्य यतः'** और योगदर्शन **'क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः'** कहकर ईश्वर की अपने ढंग से परिभाषा की गई है। परन्तु दार्शनिक और वैज्ञानिक दृष्टि से यदि ईश्वर की कोई व्याख्या करनी हो तो हम वेद का निम्न मन्त्र उपस्थित करेंगे—

यो भूतञ्च भव्यञ्च सर्वं यश्चाधितिष्ठति।
स्वर्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः॥

—अर्थात् जो भूत और भविष्यात्मक काल (Time) का तथा सर्वत्र आकाशरूप से व्याप्त देश (Space) का अधिष्ठाता है और जो केवल आनन्दस्वरूप है उस ज्येष्ठ ब्रह्म को नमस्कार है। प्रकरणानुसार वेद में ब्रह्म शब्द प्रकृति और जीवात्मा का भी वाचक बनकर आया है, इसीलिए यहाँ ज्येष्ठ ब्रह्म कहा है क्योंकि ज्येष्ठ ब्रह्म केवल परमात्मा का ही वाचक है।

लौकिक ग्रन्थों में ईश्वर की एक परिभाषा महामुनि भर्तृहरि के नीतिशतक में मिलती है। यह देखकर आश्चर्य होता है कि भर्तृहरि-कृत व्याख्या में ईश्वर-सम्बन्धी दार्शनिक और वैज्ञानिक उलझनें सर्वथा समाप्त हो जाती हैं। ईश्वर की वैज्ञानिक व्याख्या करने वाला वह श्लोक यह है—

दिक्कालाद्यनवच्छिन्नानन्तचिन्मात्रमूर्तये।
स्वानुभूत्येकमानाय नमः शान्ताय तेजसे॥

—दिशाओं और काल के बन्धन से रहित, अनन्त, चितिमात्र ही जिसकी मूर्ति है, और अपनी अनुभूति ही जिसमें एकमात्र प्रमाण है, उस शान्त तेज को नमस्कार है। दिशा और काल के बन्धन की व्याख्या हम शून्य वाले प्रकरण में कर चुके हैं। अनन्त का अर्थ है Infinite, जो गणित-शास्त्र का Infinite है अर्थात्—जिसमें कभी परस्पर न मिलने वाली समानान्तर रेखाएँ भी मिल जाती है; वैसे ही परमात्मा में भी सब विरोधों का परिहार हो जाता है, इसीलिए वह अनन्त है। **'स्वानुभूत्येकमानाय'** की भी यथा-स्थान चर्चा हो चुकी है। शान्त और तेज शब्द

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

भी परस्पर-विरोधी हैं—जो शान्त होगा वह तेज नहीं होगा और जो तेज होगा वह शान्त नहीं होगा। परन्तु परमात्मा का तेज ऐसा ही है जो शान्त भी है और तेज भी, जैसे दीपक की लौ होती है।

वेद सबके लिए

इसके आगे ऋषि ने वेद-सम्बन्धी चर्चा की है। इस सम्बन्ध में निम्न बातों का प्रतिपादन किया है। वेद ईश्वरकृत हैं, सृष्टि के आदि में बनाए गए हैं; ईश्वर नित्य है इसलिए उसकी रचना होने के कारण वेद भी नित्य हैं, अर्थात् प्रत्येक सर्गारम्भ में ये ही वेद आते हैं। ऋषि न केवल वेद के शब्दों को, किन्तु उनके अर्थों को भी ईश्वरप्रदत्त मानते हैं, अर्थात् पुस्तकरूप में तो वेद अनित्य हैं, किन्तु ज्ञानरूप में जहाँ तक शब्दों और उनके अर्थों का सम्बन्ध है, वेद नित्य हैं। इसी प्रसंग में उन्होंने विकासवाद का भी खण्डन किया है। वेदज्ञान का प्रकाश अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा इन चारों ऋषियों पर हुआ। जो ब्राह्मणग्रन्थ हैं उनमे वेदों की व्याख्या है, परन्तु वे ग्रन्थ स्वयं वेद नहीं हैं। जो वेदों की शाखाएँ हैं, वे भी शाखामात्र हैं, वेद-कोटि में नहीं आतीं, अर्थात् चारों वेदों के ब्राह्मण, ६ अंग, ६ उपांग, चार उपवेद और वेदों की ११२७ शाखाएँ—ये सब महर्षियों के बनाए ग्रन्थ हैं। ये सब परत:प्रमाण हैं और स्वत:प्रमाण केवल चार वेद ही हैं। वेदों की भाषा संसार की सब भाषाओं की मूल है। वेद-भाषा किसी देश-विदेश की भाषा नहीं है। जिस भाषा में वेद हैं, यदि वह किसी एक देश की भाषा होती तो उसमें परमात्मा का पक्षपात प्रकट होता। जैसे ईश्वर द्वारा रचित सृष्टि के अन्य पदार्थों पर किसी का एकाधिकार नहीं हो सकता, वैसे ही वेदों पर भी ब्राह्मणों का एकाधिकार नहीं है—वे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र सभी वर्णों और संसार के सब देशवासियों के लिए हैं।

विकासवाद के अनुयायी वैज्ञानिक यह कहते हैं कि वेदों को ईश्वर-रचित मानने की कोई आवश्यकता नहीं, Trial and Error के सिद्धान्त के अनुसार, जैसे बच्चा गिरते-पड़ते अन्त में चलना सीख ही लेता है, वैसे ही मानव-जाति भी विकास करते-करते वेदज्ञान तक पहुँच जाएगी।

मानवीय ज्ञान नैमित्तिक

इसके उत्तर में निवेदन है कि मानव में तथा सृष्टि के अन्य प्राणियों में एक बहुत बड़ा अन्तर है। अन्य प्राणियों के गुण-कर्म-स्वभाव जैसे भी होते हैं, जन्म-काल से ही होते हैं। इसीलिए वे जो काम करते हैं, वह पशु-प्रवृत्ति या Animal Instinct कहलाती है। जो मांसाहारी प्राणी हैं उनके बच्चों को मांस खाना, या जो वनस्पतिभोजी हैं उनके बच्चों को वनस्पति खाना सिखाना नहीं पड़ता। अपने इस स्वभाव को वे बदल भी नहीं सकते। शेर कभी घास नहीं खाएगा और गाय कभी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मांस नहीं खाएगी। इसी तरह भैंस का बच्चा या बतख अपने जन्मकाल से ही बिना सिखाए पानी में तैरना जानते हैं, परन्तु आज तक यह कभी नहीं देखा कि किसी बड़े-से-बड़े तैराक का बालक भी बिना सिखाए पानी में तैरना जानता हो। इससे यह बात स्पष्ट होती है कि मनुष्य का जितना भी ज्ञान है, वह नैमित्तिक है। मनुष्य अपने माता-पिता या साथियों का अनुकरण करके या किसी गुरु के सिखाने से ही सीखता है। यदि मनुष्य-समाज से अलग करके किसी बालक को जानवरों से भरे स्थान में या एकान्त में रख दिया जाए तो उसमें न वाणी का विकास होगा, न अन्य मानवीय ज्ञान का। इस प्रकार के परीक्षण अनेक बार किये जा चुके हैं। जो जंगली जातियां हैं, वे हजारों सालों से असभ्यता का शिकार हैं। यदि स्वयं ज्ञान का विकास होता तो इस वैज्ञानिक युग में जंगली जातियां कहीं दृष्टिगोचर नहीं होतीं। परन्तु उचित मार्ग-निर्देशन मिलने पर उनके जीवन में भी परिवर्तन परिलक्षित होता है। जैसे वर्तमान समय में हम अपने गुरुओं से पढ़कर विद्वान् होते हैं, वैसे ही सृष्टि के आरम्भ में अग्नि आदि ऋषियों को परमात्मा ने वेदों का ज्ञान दिया और उसके बाद से फिर गुरु-शिष्य-परम्परा चल पड़ी। वेद की आवश्यकता ऋषि ने इन शब्दों में प्रकट की है, "जैसे माता-पिता अपने सन्तानों पर दया-दृष्टि कर उनकी उन्नति चाहते हैं, वैसे ही परमात्मा ने सब मनुष्यों पर कृपा करके वेदों को प्रकाशित किया है, जिससे मनुष्य अविद्यान्धकार के भ्रमजाल से छूटकर विद्या-विज्ञानरूप को प्राप्त होकर आनन्द में रहें और विद्या तथा सुखों की वृद्धि करते जाएँ।"

ईश्वरीय ज्ञान का अर्थ

वेद 'ईश्वरीय ज्ञान' है, यह कहते हुए एक भ्रम भी हो सकता है जिसका निराकरण कर देना आवश्यक है। 'ईश्वरीय ज्ञान' शब्द के दो अर्थ हो सकते हैं—एक तो ईश्वर-सम्बन्धी ज्ञान, और दूसरे ईश्वर द्वारा प्रदत्त ज्ञान। यदि वेद में ईश्वरसम्बन्धी ज्ञान ही माना जाए, जैसाकि अनेक लोग उन्हें 'आध्यात्मिक ग्रन्थ' कहकर प्रकट करना चाहते हैं, तो यह वेद के स्तर को गिरा देना होगा। क्योंकि वेद में केवल ईश्वर-सम्बन्धी ज्ञान ही नहीं है, उसमें जीवात्मा और प्रकृति-सम्बन्धी और मानव-जीवन-सम्बन्धी ज्ञान का भी अक्षय भण्डार है। इसलिए 'ईश्वरीय ज्ञान' का अर्थ ईश्वर द्वारा प्रदत्त ज्ञान ही समझना चाहिए, तभी आर्यसमाज के तीसरे नियम में वर्णित ऋषि की यह घोषणा अर्थवती सिद्ध होगी, "वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है।"

—'क्षितीश वेदालंकार'
कृत 'चयनिका' से प्रस्तुत

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

लोक-सेवा और ईश्वर-सेवा

व्याख्याता—पं० रामचन्द्र देहलवी

आजकल लोग ईश्वर की उपासना के लाभ पूछते हैं। मैं ऐसे लोगों के लाभ के लिए इस विषय को ले रहा हूँ कि वैदिक धर्म में ईशोपासना का क्या अभिप्राय है। यदि आप किसी मुसलमान से यह प्रश्न करें तो वह कहेगा कि हम ख़ुदा की इबादत (worship) करते हैं। 'इबद' शब्द का अर्थ बन्दा है, अर्थात् वे अपने ख़ुदा के सामने अपने बन्दा (दास) होने की प्रतिज्ञा करते हैं। इसीसे 'बन्दगी' शब्द निकला है। आजकल कुछ लोग एक-दूसरे को बन्दगी करते हैं। हिन्दू भी प्रायः ऐसा करते हैं। ऐसा कहकर स्वयं को दास बताया व बनाया जाता है। अतः कम-से-कम हिन्दुओं को इस शब्द का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

अब आप एक सनातनी से पूछें तो वह कहेगा कि हम परमात्मा की भक्ति करते हैं। भक्ति का अर्थ सेवा है, परन्तु आर्यसमाज की वेदोक्त उपासना का अर्थ है परमात्मा के निकट होना। परमात्मा के निकट होने का क्या अर्थ है? इसके साथ ही मैं मुसलमानों की इबादत और सनातनियों की भक्ति—इन तीनों पर प्रकाश डालूँगा।

एक बार मैंने दीनानगर (पंजाब) में एक शास्त्रार्थ में प्रतिपक्षी मौलाना से पूछा कि आपकी नमाज़ का क्या लाभ है? 'नमाज़' का अर्थ क्या है? उसने कहा—'हम ख़ुदा का अदब बजा लाते हैं, आदर-सम्मान प्रकट करते हैं।' मैंने पूछा, 'क्या ख़ुदा इससे प्रसन्न हो जाएगा? क्या वह बाह्य चीज़ों से प्रसन्न होता है अथवा आभ्यन्तरिक भावों को देखकर? यदि भीतर के भाव जानकर, तो बाह्य दिखावट का क्या लाभ?' इसके अतिरिक्त मैंने यह प्रश्न किया—'क्या सचमुच ख़ुदा प्रसन्न होगा? यदि वह प्रसन्न होगा तो उसमें परिवर्तन आ गया!'

मैंने क़ुरान की एक आयत पढ़कर बताया कि ख़ुदा ने अपने बन्दों को इबादत के लिए उत्पन्न किया। उसे किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं, इसलिए उसमें परिवर्तन नहीं हो सकता। वह एकरस है, फिर प्रसन्न करने का क्या अर्थ हुआ? वह भाई इससे आगे कुछ न बता सका।

अब आप वेदोक्त उपासना को लें। हमपर यह प्रश्न किया जाता है कि उसके समीप जाने का क्या अर्थ है? क्या परमात्मा दूर है जो उसके निकट जाएँ? हमारा कथन यह है कि परमात्मा व जीव के मध्य देश व काल की कोई दूरी नहीं है। भाव यह है कि यदि हम परमात्मा के गुणों को अपने भीतर धारण कर लें तो हम उसके समीप चले जाएँगे। परमात्मा सर्वत्र है। वह जीव के साथ रहता है। हमारे व परमेश्वर के बीच

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ज्ञान की दूरी है।

उदाहरण के रूप में कई वस्तुएँ हमारे निकट होती हैं, परन्तु हमें पता नहीं चलता। कई बार लेखनी कान में होती है, हम उसे मेज़ पर खोजते हैं। गाज़ियाबाद में एक बार मैंने अपना उपनेत्र पगड़ी में रख दिया। जब उपनेत्र का विचार आया तो हम इधर-उधर खोजते रहे। अन्त में सिर की पगड़ी में से मिल गया। तात्पर्य यह है कि यह ज्ञान की दूरी या ज्ञान की भूल थी। परमात्मा अज्ञानियों से दूर है और ज्ञानियों के समीप है।

अब सनातनियों की भक्ति को लीजिए। मैंने एक भाई से पूछा कि सेवा का क्या अर्थ है? वह सेवा के अर्थ ही न बता सका। मैंने कहा कि समय पर किसी मनुष्य की आवश्यकता को पूरा करना सेवा कहलाता है, अर्थात् आवश्यकता पूरी करना। अब आवश्यकता क्या है? इस शब्द का ठीक-ठीक अर्थ क्या है? मुझे एक बार अध्यापक ने बताया कि जिस वस्तु के बिना हमारी ज़रूर (अवश्यमेव) हानि हो, उसे ज़रूरत (आवश्यकता) कहते हैं, अर्थात् जिस वस्तु के बिना हम रह नहीं सकते वही आवश्यकता है। यदि हम जल न पियें तो मर जाएँ। परन्तु क्या आपने कभी भी इस बात पर विचार किया है कि जिस ईश्वर की आप आवश्यकताएँ पूरी कर रहे हैं, उसकी आवश्यकताएँ हैं क्या?

हम किसी को प्रसन्न करने के लिए सर्वप्रथम यह देखते हैं कि उसे किस वस्तु की आवश्यकता है? मैंने एक मनुष्य के घर अभ्यागत-रूप में जाता हूँ। वह मुझसे पूछता है कि आप चाय पिएँगे? मैं कहता हूँ कि चाय मैंने कभी पी ही नहीं। तब वह कहता है कि अच्छा दूध पी लो। मैंने कहा, दूध रात को पीता हूँ। वह कहता है, अच्छा पूरी खा लो, रोटी खा लो। मैं कहता हूँ अभी रोटी की आवश्यकता नहीं। तात्पर्य यह कि वह ऐसी वस्तु का पता लगाता है जिससे कि वह मुझे प्रसन्न करे। परन्तु कभी चूक भी हो जाती है। भाषा के कारण भी भ्रम उत्पन्न हो जाता है। सेवा कुढंग से भी हो सकती है।

एक बार लाला लाजपतराय जी गुजरात काठियावाड़ में गए। वहाँ एक सज्जन ने उन्हें चाय पर बुलाया। चाय सामने रखी। जब और देने लगे तो लालाजी ने कहा—"काफ़ी है (पर्याप्त है)।" उन्होंने पुनः पूछा तो लालाजी ने फिर कहा कि काफ़ी है। काफ़ी (पर्याप्त) का भाव यह था कि और नहीं चाहिए, परन्तु उन्होंने उसको पीनेवाली कॉफ़ी समझा। और वह पीनेवाली कॉफ़ी बनवाकर लालाजी के सामने ले आए। इस प्रकार उलटी रीति से भी सेवा हो सकती है।

एक रोगी को बादाम का हलवा खिला दिया जाय तो यह उसकी सेवा नहीं है। यह उसके लिए हानिकारक है। एक वृद्ध को यदि बहुत कठोर लड्डू दे दिए जाएँ तो वह अप्रसन्न हो जाएगा। इसी प्रकार किसी का उदर भरा हुआ हो और उसे खाने को दिया जाए, और जो भूखा है उसे न खिलाया जाए तो यह भी एक भूल है। मूर्ति को हलवा खिलाया जाता है, परन्तु वह उसके होंठों के आगे नहीं जाता। इसे सब जानते हैं। देहली में स्त्रियाँ एक स्थान पर मूर्ति की पूजा करती हैं। वहाँ पर कई पदार्थ खाने के लिए प्रस्तुत किये जाते हैं। एक बार मुझे भी उधर से निकलने का अवसर प्राप्त हुआ। मैंने देखा कि स्त्रियाँ मूर्ति के मुख पर हलवा लगी रही हैं। मैंने सोचा—चलो इन्हें कुछ उपदेश दे चलें। मैंने मूर्ति के समीप जाकर देखा कि मूर्ति के होंठों पर हलवा कई दिनों

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

से चिपटकर सूख गया है और लकड़ी के समान हो गया है। मैंने देवियों से कहा—'यह कितने दिन का हलवा इसपर लगा हुआ है?' देवियाँ भी देखकर हँस पड़ीं। मैंने कहा—'ये मूर्तियाँ कुछ भी नहीं खातीं। यदि ये खाने लग जाएँ तो सबसे पहले इनका विरोध पुजारी ही करेंगे क्योंकि यदि मूर्तियाँ ही सब-कुछ खा जावें तो पुजारियों को क्या मिले?'

उसे कुछ नहीं चाहिए—परमात्मा पूर्ण है। उसे किसी वस्तु की भी आवश्यकता नहीं, परन्तु फिर भी कोई लड्डू ले-जा रहा है और कोई फूल। ईश्वर पूर्ण है और प्रकृति जड़। जो वस्तु पूर्ण है, वह किसी से कुछ नहीं चाहती। वह दूसरों के लिए ही है। जड़ होने से प्रकृति न अपने सम्बन्ध में कुछ जानती है, न दूसरों के विषय में। ईश्वर अपने-आपको भी जानता है और दूसरों को भी। एक तो ईश्वर पूर्ण है और दूसरी प्रकृति। न ईश्वर को किसी वस्तु की आवश्यकता है और न ही प्रकृति को। उनसे कोई वस्तु ली जा सकती है, उन्हें दी नहीं जा सकती। आर्यसमाजी उपासना करना चाहता है। वह ईश्वर के समीप बैठना चाहता है, इसलिए कि ईश्वर से कुछ लेकर उसकी सेवा करें।

अब सेवा किस प्रकार से करें? आप एक पण्डित जी के घर जाते हैं और एक हाथी का खिलौना भी उनके घर ले जाते हैं। आप पण्डित जी के पुत्र को वह हाथी देते हैं और कहते हैं ले बालक, इसपर सवारी किया करो। पण्डितजी इससे बहुत प्रसन्न होते हैं और आपका सत्कार करेंगे। यदि वह हाथी लेकर आप पण्डित जी से कहें—यह है आपकी सवारी के लिए। इसपर पण्डित जी आपसे रुष्ट ही होंगे। उनकी पत्नी अलग से बुरा मानेगी और बच्चा भी नाराज़गी में दूर-दूर रहेगा। अब हाथी को दोनों अवस्थाओं में एक ही घर में रहना है, फिर कारण क्या है कि बच्चे को देने पर पण्डित जी प्रसन्न, परन्तु जब उन्हें भेंट किया जाता है तो रुष्ट होते हैं?

लोक-सेवा ही प्रभु-सेवा है—वास्तव में लोक-सेवा ही ईश्वर की सेवा है। पण्डित जी को हाथी की कोई आवश्यकता नहीं। उसके लिए वह अत्यन्त हेय है; उसे दिया जाय तो वह बुरा मानेंगे। ईश्वर को कोई वस्तु चाहिए ही नहीं और आप फिर भी देंगे तो ईश्वर को कैसा लगेगा? पूर्ण परमेश्वर की जब कोई आवश्यकता ही नहीं तो उसे देने का प्रयोजन ही क्या?

यदि वही वस्तु उसके बच्चों को दी जाएगी तो प्रभु प्रसन्न होंगे। यही उसकी सेवा है। यही उसकी भक्ति है। लोक-सेवा भी ईशोपासना है। यदि ईश्वर के बच्चों का लाभ होगा तो परमेश्वर प्रसन्न होंगे। उन्हें यह अच्छा लगेगा। अब आप सबको शंका होगी—यदि लोक-सेवा ही ईश्वर की उपासना है तो दो समय सन्ध्या करने की क्या आवश्यकता है? इसके सम्बन्ध में यह बतला दूँ कि दो समय सन्ध्या करना परम आवश्यक है। सन्ध्या करना स्वयं को लेक-सेवा के लिए तैयार करना है।[१]

---

१. सन् १९३७ में दिये गए एक व्याख्यान का साराश।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हमारे प्रकाशन

महात्मा आनन्द स्वामी सरस्वती

आनन्द गायत्री कथा	१४.००
एक ही रास्ता	१४.००
शंकर और दयानन्द	८.००
मानव जीवन-गाथा	१४.००
सत्यनारायण व्रत कथा	६.००
भक्त और भगवान	१२.००
उपनिषदों का सन्देश	१८.००
घोर घने जंगल में	२२.००
मानव और मानवता	३२.००
प्रभु मिलन की राह	२२.००
यह धन किसका है?	२२.००
बोध-कथाएँ	२०.००
दो रास्ते	१७.००
दुनिया में रहना किस तरह	१७.००
तत्त्वज्ञान	२२.००
प्रभु-दर्शन	१७.००
प्रभु-भक्ति	१२.००
महामन्त्र	१४.००
सुखी गृहस्थ	७.००
त्यागमयी देवियाँ	९.००
महात्मा आनन्द स्वामी (जीवनी)	२५.००

MAHATMA ANAND SWAMI

Anand Gayatri Katha	30.00
The Only Way	30.00
Bodh Kathayen	40.00
How To Lead Life?	30.00

महर्षि दयानन्द

व्यवहारभानु	४.००
स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश	१.५०
आर्योद्देश्यरत्नमाला	१.५०
पंचमहायज्ञ विधि:	८.००

ब्र. जगन्नाथ पथिक

सन्ध्या योग ब्रह्म साक्षात्कार	१२५.००
(वैदिक सन्ध्या से आलोक-प्राप्ति की पद्धति)	

स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

सत्यार्थ प्रकाश	
(आधुनिक हिन्दी रूपान्तर)	१२५.००
महाभारतम् (तीन खण्ड)	६००.००
वाल्मीकि रामायण	१७५.००
षड्दर्शनम्	१५०.००
चाणक्यनीति दर्पण	६०.००
विदुरनीति: (हिन्दी-संस्कृत-अंग्रेजी)	४०.००
ब्रह्मचर्य गौरव	९.००
विद्यार्थियों की दिनचर्या	९.००
कुछ करो कुछ बनो	१२.००
मर्यादा पुरुषोत्तम राम	१२.००
आदर्श परिवार	१८.००
दयानन्द सूक्ति और सुभाषित	२५.००
वैदिक विवाह पद्धति	१५.००
ऋग्वेद सूक्ति सुधा	२५.००
अथर्ववेद सूक्ति सुधा	१५.००
सामवेद सूक्ति सुधा	१२.००
ऋग्वेद शतकम्	१०.००
यजुर्वेद शतकम्	१०.००
सामवेद शतकम्	१०.००
अथर्ववेद शतकम्	१०.००
भक्ति संगीत शतकम्	६.००
चमत्कारी औषधियाँ	१५.००
घरेलू औषधियाँ	१५.००
चतुर्वेद शतकम् (सजिल्द)	५०.००
स्वर्ण पथ	१२.००
प्रभात-वन्दन	८.००
प्रार्थना-प्रकाश	८.००
शिवसंकल्प	८.००
प्रार्थना लोक (सजिल्द)	४०.००
(प्रभात-वन्दन, प्रार्थना-प्रकाश व शिवसंकल्प एकसाथ)	
वेद सौरभ	१२.००

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आचार्य उदयवीर शास्त्री

न्यायदर्शन भाष्य १५०.००
वैशेषिकदर्शन भाष्य १५०.००
सांख्यदर्शन भाष्य १२५.००
योगदर्शन भाष्य १००.००
वेदान्तदर्शन भाष्य (ब्रह्मसूत्र) १८०.००
मीमांसादर्शन का विद्योदय भाष्य ३५०.००
सांख्यदर्शन का इतिहास २५०.००
सांख्य सिद्धान्त २००.००
वेदान्तदर्शन का इतिहास २००.००
प्राचीन सांख्य सन्दर्भ १००.००
वीर तरंगिणी (लेखों का संग्रह) २५०.००

स्वामी विद्यानन्द सरस्वती

On The Vedas 35.00
दीप्तिः (विवादास्पद लेखों का संग्रह) ८०.००
आदि शंकराचार्य वेदान्ती नहीं थे ४०.००
सृष्टि विज्ञान और विकासवाद ४०.००

पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय

सन्ध्या : क्या, क्यों, कैसे १५.००
विवाह और विवाहित जीवन १८.००
जीवात्मा ४०.००
भगवत् कथा (उपनिषदों के आधार पर) १४.००

प्रो. सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार

ब्रह्मचर्य सन्देश २५.००
वैदिक विचारधारा का वैज्ञानिक आधार १५०.००

प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु

वैदिक ज्ञान-धारा (लेखों का संग्रह) ८०.००
महात्मा हंसराज (जीवनी) ६०.००
महात्मा हंसराज ग्रन्थावली (४ खण्ड) २४०.००
(सम्पूर्ण व्यक्तित्व व कृतित्व)
आर्य सूक्ति सुधा १२.००
(आर्य विद्वानों की सूक्तियाँ)

प्रो. नित्यानन्द पटेल

पूर्व और पश्चिम ३५.००
सन्ध्या विनय ६.००

डॉ. भवानीलाल भारतीय

बिखरे मोती (आर्य महापुरुषों के संस्मरण व शास्त्रर्थों की नोक-झोंक) ४०.००
स्वामी श्रद्धानन्द ग्रन्थावली (११ खण्डों में) (सम्पूर्ण कृतित्व व जीवनी) ६६०.००
आर्य समाज के बीस बलिदानी १५..००
श्याम जी कृष्ण वर्मा (जीवनी) २४.००
आर्य समाज विषयक साहित्य परिचय २५.००

स्वामी वेदानन्द सरस्वती

ऋषि बोध कथा १०.००
वैदिक धर्म २५.००

सुरेशचन्द्र वेदालंकार

सहेलियों की वार्ता २०.००

लेः देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय
अनुः पं. घासीराम

महर्षि दयानन्द चरित २५०.००
(प्रामाणिक-अनूठा जीवन-चरित्र)

क्षितीश वेदालंकार

चयनिका (चुने हुए लेखों का संग्रह) १२५.००

पं. रामनाथ वेदालंकार

वैदिक मधुवृष्टि (निबन्ध संग्रह) ६०.००

आ. प्रियव्रत वेदवाचस्पति

वेदोद्यान के चुने हुए फूल ५०.००
(वेद-मन्त्रों व सूक्तों का संग्रह)

पं. चन्द्रभानु सिद्धान्ताभूषण

महाभारत सूक्ति सुधा ४०.००

पं. विश्वनाथ विद्यालंकार

सन्ध्या रहस्य २५.००

प्रो. रामविचार एम.ए.

आर्य समाज का कायाकल्प कैसे हो ? ४.००

पं. नन्दलाल वानप्रस्थी

गीत सागर (अनेक कवियों के गीत-भजनों का संग्रह) २५.००

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पं. वीरसेन वेदश्रमी

याज्ञिक आचार संहिता ४५.००

वैदिक सम्पदा (वैदिक वाङ्मय के आधार पर मानवीय जीवन का विवेचन) १७५.००

नरेन्द्र विद्यावाचस्पति

प्रेरक बोध कथाएँ १५.००

पं. सत्यपाल विद्यालंकार

श्रीमद्भगवद्गीता १५.००

WORKS OF SVAMI SATYA PRAKASH SARASVATI

Founders of Sciences in Ancient India (Two Vols.) 800.00

Coinage in Ancient India (Two Vols.) 600.00

Geometry in Ancient India 350.00

Brahmgupta and His Works 350.00

The Critical, Cultural Study of Satapath Brahman In Press

Speeches, Writings and Addresses

Vol.I : VINCITVERITAS 150.00

Vol.II : ARYA SAMAJ : A RENAISSANCE 150.00

Vol.III : DAYANAND : A PHILOSOPHER 150.00

Vol. IV : THREE LIFE HAZARDS 150.00

चित्र

स्वामी दयानन्द (कुर्सी) १८" X २२" ३.००

स्वामी दयानन्द (आसन) १८" X २२" ३.००

स्वामी श्रद्धानन्द १८" X २२" एक रंग ३.००

गुरु विरजानन्द १८" X २२" एक रंग ३.००

पण्डित लेखराम १८" X २२" एक रंग ३.००

स्वामी दर्शनानन्द १८" X २२" एक रंग ३.००

गुरुदत्त विद्यार्थी १८" X २२" एक रंग ३.००

महात्मा हंसराज १८" X २२" एक रंग ३.००

स्वास्थ्य

जब प्रकृति की अनमोल दवाइयाँ आपको उपलब्ध हों तो पुड़िया आदि की क्या जरूरत है।

घर का वैद्य—प्याज ७.००

घर का वैद्य—लहसुन ७.००

घर का वैद्य—गन्ना ७.००

घर का वैद्य—नीम ७.००

घर का वैद्य—सिरस ७.००

घर का वैद्य—तुलसी ७.००

घर का वैद्य—आँवला ७.००

घर का वैद्य—नींबू ७.००

घर का वैद्य—पीपल ७.००

घर का वैद्य—आक ७.००

घर का वैद्य—गाजर ७.००

घर का वैद्य—मूली ७.००

घर का वैद्य—अदरक ७.००

घर का वैद्य—हल्दी ७.००

घर का वैद्य—बरगद ७.००

घर का वैद्य—दूध-घी ७.००

घर का वैद्य—दही-मट्ठा ७.००

घर का वैद्य—हींग ७.००

घर का वैद्य—नमक ७.००

घर का वैद्य—बेल ७.००

घर का वैद्य—शहद ७.००

घर का वैद्य—फिटकरी ७.००

घर का वैद्य—साग-भाजी ७.००

घर का वैद्य—अनाज ७.००

घर का वैद्य—फल-फूल ७.००

घर का वैद्य—धूप-पानी १५.००

सभी पच्चीस पुस्तकें पाँच आकर्षक जिल्दों में भी उपलब्ध, कीमत ४५.०० रुपये प्रत्येक

घर का वैद्य (प्याज, लहसुन, गन्ना, नीम, सिरस)

घर का वैद्य (तुलसी, आँवला, नींबू, पीपल, आक)

घर का वैद्य (गाजर, मूली अदरक, हल्दी, बरगद)

घर का वैद्य (दूध-घी, दही-मट्ठा, हींग, नमक, बेल)

घर का वैद्य (शहद, अनाज, साग-भाजी, फल-फूल, फिटकरी)

घर का वैद्य—धूप-पानी ४०.००

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

बालोपयोगी

हरिशचन्द्र विद्यालंकार
वैदिक शिष्टाचार ३.००

पं. रामगोपाल विद्यालंकार
दयानन्द चित्रावली २५.००
(अनेक बहुरंगी चित्रों से सुसज्जित)

ब्र. नन्दकिशोर
आचार्य गौरव ५.००

पं. नारायण स्वामी
प्राणायाम विधि २.५०

सत्यभूषण वेदालंकार एम.ए.
नैतिक शिक्षा—प्रथम २.५०
नैतिक शिक्षा—द्वितीय ३.००
नैतिक शिक्षा—तृतीय ४.५०
नैतिक शिक्षा—चतुर्थ ५.५०
नैतिक शिक्षा—पंचम ५.५०
नैतिक शिक्षा—षष्ठ ६.००
नैतिक शिक्षा—सप्तम ६.००
नैतिक शिक्षा—अष्टम ६.००
नैतिक शिक्षा—नवम ९.००
नैतिक शिक्षा—दशम ९.००

डॉ. देवव्रत आचार्य
योग शिक्षा-१ १२.००
योग शिक्षा-२ १०.००
योग शिक्षा-३ १०.००
योग शिक्षा-४ १०.००

कर्म काण्ड की पुस्तकें
आर्य सत्संग गुटका ४.००
पंचयज्ञ प्रकाशिका १०.००
वैदिक संध्या १.००
सामाजिक पद्धतियाँ (मदनजीत आर्य) १२.००
संध्या-हवन-दर्पण (उर्दू) ८.००

त्रिलोकचन्द विशारद
महर्षि दयानन्द ५.००
गुरु विरजानन्द ५.००
स्वामी श्रद्धानन्द ५.००
धर्मवीर पं. लेखराम ५.००
मुनिवर पं. गुरुदत्त ६.००
स्वामी दर्शनानन्द ५.००

प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु
महात्मा हंसराज ४.५०
स्वामी स्वतन्त्रानन्द ४.५०
महात्मा नारायण स्वामी ५.५०
देवतास्वरूप भाई परमानन्द ५.५०

सुनील शर्मा
हमारे बालनायक ९.००
देश के दुलारे ९.००
हमारे कर्णधार ९.००

नीरू शर्मा
आदर्श महिलाएँ १०.००

स्वामी दर्शनानन्द
कथा पच्चीसी ९.००
बाल शिक्षा २.५०

नरेन्द्र गुप्ता
सच का फल ८.००
(कथाएँ उपनिषद की)

डॉ. मनोहर लाल
जीने का सही ढंग (प्रेरक बोध कथाएँ) ८.००

डॉ. कृष्ण वल्लभ पालीवाल
वैदिक राष्ट्रीय ऋचाएँ १२.००

जीवनी
महात्मा आनन्द स्वामी (उर्दू) १०.००

आ. उदयवीर शास्त्री
आचार्य शंकर का काल १०.००

पं. वा. विष्णुदयाल (मॉरीशस)
वेद भगवान बोले १५.००

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अन्य प्रकाशन

डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकार

आर्य समाज का इतिहास (भाग १)	३२५.००
आर्य समाज का इतिहास (भाग २)	३२५.००
आर्य समाज का इतिहास (भाग ३)	३२५.००
आर्य समाज का इतिहास (भाग ४)	३२५.००
आर्य समाज का इतिहास (भाग ५)	३२५.००
आर्य समाज का इतिहास (भाग ६)	३२५.००
प्राचीन भारतीय इतिहास का वैदिक युग	५६.००
दक्षिणी-पूर्वी और दक्षिणी एशिया में भारतीय संस्कृति	५८.००
पूर्वी और दक्षिणी-पूर्वी एशिया का आधुनिक इतिहास	७७.००
प्राचीन भारत का धार्मिक सामाजिक और आर्थिक जीवन	७२.००
मध्य एशिया व चीन में भारतीय संस्कृति	५८.००
प्राचीन भारत	८०.००
भारतीय संस्कृति का विकास	७७.००
प्राचीन भारत की शासन संस्थाएँ और राजनीतिक विचार	५८.००
एशिया का आधुनिक इतिहास	१३०.००
यूरोप का इतिहास	१४०.००
समाजशास्त्र	८०.००
चाणक्य	६५.००
मौर्य साम्राज्य का इतिहास	१३५.००
भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास	५८.००
भारत का इतिहास	५५.००
विश्व की प्राचीन सभ्यताएँ	१७५.००
मध्यकालीन भारत	५८.००
प्राचीन भारत का सांस्कृतिक इतिहास	३२५.००
Political Thought of Swami Dayanand	150.00

डॉ. सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार

एकादशोपनिषद्	१२५.००
उपनिषद् प्रकाश	११०.००
श्रीमद्भगवद्गीता	१०५.००
संस्कार चन्द्रिका	१२०.००
बुढ़ापे से जवानी की ओर	९५.००
होमियोपैथिक चिकित्सा	१२५.००
होमियोपैथिक चित्रण	१२५.००
होमियोपैथी का क ख ग	१००.००
होमियोपैथी के मूल सिद्धान्त	८०.००
वैदिक संस्कृति के मूल तत्त्व	४०.००
From old age to youth through Yoga	80.00
चतुर्वेद गंगालहरी	९५.००
मेरी नानी की कहानी	३५.००
माँ और बच्चा	२५.००

महर्षि दयानन्द

सत्यार्थ प्रकाश	५०.००
संस्कार विधि	१०.००
ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका	४०.००
उपदेश मञ्जरी	१०.००
संस्कृत वाक्य प्रबोध	५.००
महर्षि दयानन्द (पं. लेखराम)	१००.००
Teachings of Gita	75.00
Light of Truth	125.00
Aryoudeshya Ratanmala	10.00

पं. भगवद्दत्त

सविता देवता	५८.००
बृहस्पति देवता	६५.००

पं. सुरेन्द्र कुमार

मनुस्मृति	१८०.००

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

समर्पण शोध संस्थान के प्रकाशन

योगेश्वर कृष्ण (चभूपति एम.ए.)	४०.००
वैदिक स्वर्ग (,,)	३०.००
वैदिक दर्शन (,,)	१५.००
अनादि तत्त्व (,,)	२५.००
आर्य ज्योति (रामानाथ वेदा.)	५०.००
वेद मंजरी (,,)	५०.००
वैदिक नारी (,,)	४०.००
अग्निहोत्र सर्वस्व (स्वामी दीक्षानन्द)	१०.००
उपहार सर्वस्व (,,)	५.००
मृत्युञ्जय सर्वस्व (,,)	१०.००
स्वाध्याय सर्वस्व (,,)	१२.००
उपनयन सर्वस्व (,,)	१०.००
दो पुटन के बीच (,,)	८.००
ए लविंग टोकन	५.००
वेदामृत (श्रीपाद दामोदर सातवलेकर)	८०.००
पंचयज्ञ प्रकाश (स्वामी सर्म्पणानन्द)	२५.००
श्रीमद्भगवत गीता (समर्पण भाष्य)	२०.००
श्रुति सौरभ (शिवकुमार शास्त्री)	६०.००
वैदिक विनय (अभयदेव वेदा.)	१२५.००
वैदिक उपदेश माला (,,)	१०.००
सामवेद (पूर्व. उत्तरार्ध) (दो भाग)	४००.००
सामवेद (संस्कृत भाष्य) (दो भाग)	७००.००

स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती

आर्य समाज सिद्धान्त और प्रगति	४०.००
मनुष्य और मानव धर्म	१०.००
ईश्वर और ईश्वरीय ज्ञान	१०.००
प्रार्थना और चिन्तन	१२.००
हम क्या खाएँ घास या माँस	२५.००
The Parables & Dialogues from the Upnishadas	150.00
Self Life & Conciousness	12.00
Agnihotra	10.00
Architect of Arya Samaj	12.00
Man and his Religion	10.00
Critical Study of the Philosophy of Dayananda	50.00
Vedic Samdhya	8.00

स्वामी योगेश्वरानन्द

बहिरंग योग	७०.००
आत्मविज्ञान	८०.००
ब्रह्मविज्ञान	१००.००
दिव्य ज्योति विज्ञान	६०.००
प्राण विज्ञान	५०.००
दिव्य शब्द विज्ञान	६०.००
निर्गुण ब्रह्म	३०.००
व्याख्यानमाला (५ भाग)	१५०.००
हिमालय का यो॰गी-I+II	१५५.००
First Step to Higher Yoga	70.00
Science of Soul	80.00
Science of Divinity	100.00
Science of Divine Light	65.00
Science of Vital Force	40.00
The Essential Colourlessness of the Absolute	40.00
Science of Divine Sound	40.00
Beads of Sermons	30.00
Himalaya Ka Yogi-I+II	160.00

पं. कपिल देव द्विवेदी

सुखी जीवन	१८.००
सुखी गृहस्थ	१२.५०
सुखी परिवार	१८.००
आचार शिक्षा	१०.००
नीति शिक्षा	१०.००
वेदों में नारी	२०.००
सुखी समाज	१८.००
वैदिक मनोविज्ञान	१८.००
यजुर्वेद सुभाषितावली	२५.००
सामवेद सुभाषितावली	२५.००
अथर्ववेद सुभाषितावली	३५.००
ऋग्वेद सुभाषितावली	४०.००
वेदों में आयुर्वेद	९०.००
Vedic Samdhya & Agnihotra	30.00
The Essence of The Vedas	200.00

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

Svami Satya Prakash Sarasvati

Rigveda (13 vols)	2700.00
Athervaveda (5 vols)	1125.00
Samveda (2 vols)	1150.00
Yajurveda (1 vol)	500.00

स्वामी जगदीश्वरानन्द

देवर्षि दयानन्द चरित	२५.००
शुक्र नीतिसार	८०.००
सामवेद भाष्य	१००.००
बाल शिक्षा	६.००

स्वामी विद्यानन्द सरस्वती

भूमिका भास्कर (दो खण्ड)	३००.००
सत्यार्थ भास्कर (दो खण्ड)	७००.००
संस्कार भास्कर	१५०.००
तत्त्वमसि	४०.००
आर्यों का आदिदेश और उनकी सभ्यता	५०.००
रामायण : भ्रान्तियाँ और समाधान	६०.००
आर्य सिद्धान्त विमर्श	२५.००
गौ की पुकार	१५.००
भारत भाग्य विधाता : दयानन्द	१२.००
Ishopanishad	45.00
Brahmasutra	300.00
The Riddle of Life & Death	20.00
Vedic Concept of God	50.00

प्रो. रामविचार एम. ए.

वेद सन्देश (दो खण्ड)	१००.००

रमेश मुनि वानप्रस्थ

वैदिक यज्ञानुष्ठान विधिः	८०.००

चमूपति एम. ए.

विचार वाटिका (दो भाग)	१००.००

ब्र. नन्दकिशोर

मातृ गौरव	५.००
सत्संग गौरव	९.००
पितृ गौरव	८.००
राष्ट्र गौरव	३०.००
विद्या गौरव	३०.००

ट्रस्ट के प्रकाशन

अष्टाध्यायी भाष्य (तीन भाग)	१८०.००
अष्टाध्यायी (मूल)	६.००
संस्कृत पठन-पाठन की सरलतम विधि (दो खण्ड)	७०.००
महाभाष्य (तीन खण्ड)	२७५.००
प्यारा ऋषि (म. आनन्द स्वामी)	५.००
ऋषि दयानन्द के शास्त्रार्थ और प्रवचन	५०.००
ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन	१४०.००
ऋग्वेद परिचय	२०.००
वैदिक गृहस्थ आश्रम	५०.००
वैदिक जीवन	३०.००
ध्यान योग प्रकाश	२५.००
Anthrology of Vedic Hymns	100.00
Vedic Concept of Yog & Meditation	50.00
Success Motivating Vedic Lores	50.00

डॉ. भवानीलाल भारतीय

नवजागरण के पुरोधा : दयानन्द	६०.००
ऋषि दयानन्द के भक्त, प्रशंसक और सत्संगी	२०.००
मैंने ऋषि दयानन्द को देखा	१०.००
वैदिक मातृभूमि वंदना	२०.००

डॉ. ओमप्रकाश वेदालंकार

मृत्यु से अमृत की ओर	२०.००
आर्यों का परम धर्म	७.००
नए घर के दो पंछी	१७.००
अपने आपको कैसे पढ़ें	१७.००
प्रभु के द्वार पर	२२.५०

विजय बिहारीलाल माथुर

आर्य समाज के नियमों की व्याख्या (हिन्दी)	१५.००
आर्य समाज के नियमों की व्याख्या (अंग्रेजी)	१५.००

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

डी॰ ए॰ वी॰ प्रकाशन

महर्षि दयानन्द और उनके अनुवर्ती	५०.००
सूक्तियां (हिन्दी-संस्कृत-अंग्रेजी)	४०.००
प्रेरक प्रवचन (महात्मा हंसराज)	३५.००
क्रान्तिकारी भाई परमानन्द	५०.००
महात्मा हंसराज (आनन्द स्वामी)	४८.००
Swaemi Daynand	35.00
Story of My Life (Lajpat Rai)	50.00
Mahatma Hansraj(Eng.)	35.00
Rishi Dayanand Saraswati	30.00
Reminiscences and Reflections of a Vedic Scholar(Prof.Satyavrat)	60.00
The Arya Samaj (Lajpat Rai)	50.00
Wisdom of the Vedas	35.00
Swami Dayanand through Non Arya Samajist Eyes	75.00
Chips from a Vedic Workshop	80.00

आयुर्वेद-स्वास्थ्य

चरक संहिता (दो भाग)	४५०.००
सुश्रुत संहिता	१९८.००
आयुर्वेद नवनीत	६५.००
आयुर्वेद चिकित्सा सार	३०.००
आयुर्वेद के चमत्कार	५०.००
योग के अद्‌भुत चमत्कार	३०.००
भोजन द्वारा चिकित्सा	५५.००
क्या खायें और क्यों	४०.००
आरोग्य दर्पण	२५.००
पेटेण्ट दवाइयों द्वारा आयुर्वेदिक चिकित्सा	५०.००
सरल प्राकृतिक चिकित्सा	२५.००

शिवनारायण उपाध्याय

आत्म-सूत्र	६०.००
वैदिक राजनीतिशास्त्र	७५.००
वेदों की वैज्ञानिक अवधारणा	१००.००
वेद और पर्यावरण	२५.००

सभा के प्रकाशन

ऋग्वेदभाष्यम् (पांच भाग)	६२५.००
अथर्ववेदभाष्यम् (दो भाग)	२७५.००
सामवेदभाष्यम् (एक भाग)	९०.००
यजुर्वेदभाष्यम् (एक भाग)	१२५.००
वैदिक सम्पत्ति (रघुनन्दन शर्मा)	१२५.००
कुलियात आर्य मुसाफिर (पं॰ लेखराम)	२००.००
मृत्यु और परलोक	१६.००
योग रहस्य (नारायण स्वामी)	१४.००
पं॰ रामचन्द्र देहलवी लेखावली	१८.००
आर्य पर्व-पद्धति	२५.००
कर्त्तव्य दर्पण	१०.००
विद्यार्थी जीवन रहस्य	५.००
आर्य समाज क्या है	५.००
कल्याण मार्ग का पथिक	१५.००
श्रीमद्दयानन्द प्रकाश (स्वामी सत्यानन्द)	४०.००
संस्कारचन्द्रिका (भीमसेन शर्मा)	१२५.००
आत्मदर्शन	१०.००
आर्यसमाज का इतिहास(दो खण्ड)	१२५.००
चौदहवीं का चांद	१८.००
What is Arya Smaj ?	30.00
Science in the Vedas	25.00
Rigveda (5 Vols.)	420.00
Atharva Veda (2 Vols.)	130.00
Samveda	65.00
Yajurveda	125.00
Introduction of the Veda	30.00
Sanskarvidhi	35.00
Nine Upnishadas	20.00

प्रा॰ राजेन्द्र जिज्ञासु

तड़पवाले, तड़पाती जिनकी कहानी	३०.००

म॰ नारायण स्वामी

कर्म रहस्य	२०.००

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

विशेषांक

'अजब हैरान हूं भगवन्.......'

इस प्रसिद्ध भजन के लेखक सुप्रसिद्ध कवि तथा
पारसी रंगमंच के महान् नाटककार

पं॰ नारायणप्रसाद बेताब

के ऋषि दयानन्द के जीवन प्रसंगों पर

लिखे गये चार प्रसिद्ध मुसद्दसों (लम्बी कविताएं)
का प्रथम बार प्रकाशन

साथ में कवि बेताब के व्यक्तित्व, जीवन तथा कृतित्व की शोधपूर्ण जानकारी। बेताब जी का दुर्लभ चित्र भी दिया जा रहा है ।

सम्पादन : डॉ॰ भवानीलाल भारतीय

लगभग १०० पृष्ठों का यह विशेषांक अगस्त माह में आपको प्राप्त होगा। अपना वार्षिक शुल्क आज ही भेजें। जिन सदस्यों का शुल्क ३१।७।९६ तक प्राप्त हो जाएगा उन्हें यह विशेषांक अगस्त ९६ में भेजा जाएगा ।

—अजयकुमार

निवेदन

'वेद' एवं 'दर्शनानन्द ग्रन्थ-संग्रह' के सदस्यों से

हमें कई सदस्यों के पत्र प्राप्त हो रहे हैं इन दोनों योजनाओं के सम्बन्ध में। चारों वेदों की मूल संहिताओं की छपाई मई माह में शुरू हो जाएगी तथा जून में यह ग्रन्थ आपके हाथों में होगा। हमें विश्वास है कि इसके शुद्ध एवं सुन्दर प्रकाशन पर आप सन्तोष व्यक्त करेंगे तथा विलम्ब से हुई असुविधा को भूल जाएंगे। इसके प्रकाशन के बाद 'दर्शनानन्द ग्रन्थ-संग्रह' भी शीघ्र ही आपको प्राप्त होगा।

आपसे निरन्तर प्राप्त सहयोग के लिए आभार सहित।

—अजयकुमार

प्रकाशक-मुद्रक अजयकुमार ने सम्पादित कर अजय प्रिण्टर्स, दिल्ली-३२ में मुद्रित करा वेदप्रकाश कार्यालय, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली से प्रसारित किया ।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi